वार्षिक रु. २००, मूल्य रु. २०

ISSN 2582-0656

विवेक ज्योति

रामकृष्ण मिशन
विवेकानन्द आश्रम
रायपुर (छ.ग.)

वर्ष ६२ अंक ४
अप्रैल २०२४

* आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च *

वर्ष ६२

अंक ४

विवेक-ज्योति

हिन्दी मासिक

प्रबन्ध सम्पादक
स्वामी अव्ययात्मानन्द

व्यवस्थापक
स्वामी स्थिरानन्द

सम्पादक
स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक
स्वामी पद्माक्षानन्द

चैत्र, सम्वत् २०८१

अप्रैल, २०२४

अनुक्रमणिका

* हिन्दू धर्म में राष्ट्रीय भाव है आध्यात्मिकता : विवेकानन्द १५०
* श्रीराम और श्रीरामकृष्ण (स्वामी निखिलात्मानन्द) १५३
* मित्रों के मित्र श्रीराम (रामकुमार गुप्ता) १५६
* दूसरों का हित पहले सोचो (स्वामी सत्यरूपानन्द) १५८
* (बच्चों का आंगन) हनुमानजी से सीखें (श्रीमती मिताली सिंह) १५९
* हिन्दी साहित्याकाश के प्रखर सूर्य श्रीराम (उत्कर्ष चौबे) १६०
* (युवा प्रांगण) श्रीराम और युवा (स्वामी गुणदानन्द) १६७
* सबकी श्रीमाँ सारदा (स्वामी चेतनानन्द) १७२
* संस्कृत साहित्य में श्रीराम (श्री अरुपम सान्याल) १७६
* याद्रादी भुवनगिरी मठ : आन्तरिक जीवन का स्वर्ग (स्वामी सत्येशानन्द) १७९
* गाँधी के श्रीराम (डॉ. रंजना शर्मा) १८१
* राजपुत्र का भ्रम (स्वामी सर्वप्रियानन्द) १९०
* (कविता) हिय में बसते हैं श्रीराम (डॉ. ओमप्रकाश वर्मा) १६५
* (कविता) राम भजो दिन रैन (भानुदत्त त्रिपाठी, 'मधुरेश') १७८

शृंखलाएँ

मंगलाचरण (स्तोत्र) १४९
पुरखों की थाती १४९
सम्पादकीय १५१
प्रश्नोपनिषद् १६६
रामगीता १६९
गीतातत्त्व-चिन्तन १७४
श्रीरामकृष्ण-गीता १७८
सारगाछी की स्मृतियाँ १८५
साधुओं के पावन प्रसंग १८७
समाचार और सूचनाएँ १९१

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)

विवेक-ज्योति दूरभाष : ***०९८२७१ ९७५३५*** (फोन करने का समय केवल सुबह १० से १२)
ई-मेल : **vivekjyotirkmraipur@gmail.com,** वेबसाइट : ***www.rkmraipur.org***
आश्रम कार्यालय : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९ (समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)
रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

ISSN 2582-0656

विवेक-ज्योति के सदस्य कैसे बनें

भारत में	वार्षिक	५ वर्षों के लिए	१० वर्षों के लिए
एक प्रति २०/-	२००/-	१०००/-	२०००/-
विदेशों में (हवाई डाक से)	६० यू.एस. डॉलर	३०० यू.एस. डॉलर	
संस्थाओं के लिए	२५०/-	१२५०/-	
भारत में रजिस्टर्ड पोस्ट से माँगने का शुल्क प्रति अंक अतिरिक्त ३०/- देय होगा।			

* सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक या साधारण मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – **'रामकृष्ण मिशन'** (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाकर रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम रायपुर (छ.ग.) ४९२००१ के नाम स्पीड पोस्ट से भेज दें अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा करायें :

बैंक का नाम : सेन्ट्रल बैंक ऑफ इंडिया
अकाउण्ट का नाम : रामकृष्ण मिशन, रायपुर
शाखा का नाम : विवेकानन्द आश्रम,रायपुर,छ.ग.
अकाउण्ट नम्बर : 1385116124
IFSC : CBIN0280804

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

आवरण पृष्ठ पर भगवान श्रीरामचन्द्र जी के अयोध्या नगर में अवतरण को दर्शाया गया है। बालक राम-लला का चित्र श्रीरामकृष्ण अद्वैत आश्रम, वाराणसी से प्राप्त हुआ है।

अप्रैल माह के जयन्ती और त्यौहार

१७	राम नवमी
२१	महावीर जयन्ती
५,१९	एकादशी

विवेक-ज्योति के सदस्य बनाएँ

प्रिय मित्र,

युगावतार श्रीरामकृष्ण और विश्ववन्द्य आचार्य स्वामी विवेकानन्द के आविर्भाव से विश्व-इतिहास के एक अभिनव युग का सूत्रपात हुआ है। इससे गत एक शताब्दी से भारतीय जन-जीवन की प्रत्येक विधा में एक नव-जीवन का संचार हो रहा है। राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर, ईसा, मुहम्मद, शंकराचार्य, चैतन्य, नानक तथा रामकृष्ण-विवेकानन्द, आदि कालजयी विभूतियों के जीवन और कार्य अल्पकालिक होते हुए भी शाश्वत प्रभावकारी एवं प्रेरक होते हैं और सहस्त्रों वर्षों तक कोटि-कोटि लोगों की आस्था, श्रद्धा तथा प्रेरणा के केन्द्र-बिन्दु बनकर विश्व का असीम कल्याण करते हैं। श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा नित्य उत्तरोत्तर व्यापक होती हुई, भारतवर्ष सहित सम्पूर्ण विश्ववासियों में परस्पर सद्भाव को अनुप्राणित कर रही है।

भारत की सनातन वैदिक परम्परा, मध्यकालीन हिन्दू संस्कृति तथा श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द के सार्वजनीन उदार सन्देश का प्रचार-प्रसार करने के लिए स्वामीजी के जन्म-शताब्दी वर्ष १९६३ ई. से 'विवेक-ज्योति' पत्रिका को त्रैमासिक रूप में आरम्भ किया गया था, जो १९९९ से मासिक होकर गत ६१ वर्षों से निरन्तर प्रज्वलित रहकर भारत के कोने-कोने में बिखरे अपने सहस्त्रों प्रेमियों का हृदय आलोकित करती आ रही है। आज के संक्रमण-काल में, जब असहिष्णुता तथा कट्टरतावाद की आसुरी शक्तियाँ सुरसा के समान अपने मुख फैलाए पूरी विश्व-सभ्यता को निगल जाने के लिए आतुर हैं, इस 'युगधर्म' के प्रचार रूपी पुण्यकार्य में सहयोगी होकर इसे घर-घर पहुँचाने में क्या आप भी हमारा हाथ नहीं बँटायेंगे? आपसे हमारा हार्दिक अनुरोध है कि कम-से-कम पाँच नये सदस्यों को 'विवेक-ज्योति' परिवार में सम्मिलित कराने का संकल्प आप अवश्य लें। **– व्यवस्थापक**

विवेक-ज्योति कोष/स्थायी कोष

दान दाता	दान-राशि
श्री अनुराग प्रसाद, कौशाम्बी,गाजियाबाद (उ.प्र.)	९४०१/-

क्रमांक	विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना के सहयोग-कर्ता	प्राप्त-कर्ता (पुस्तकालय/संस्थान)
७१६.	श्री अनुराग (स्मृति में श्रीरामराज एवं श्रीमती उषाप्रसाद) गाजियाबाद (उ.प्र.)	शा.उच्च.मा. विद्यालय सोनसिल्ली, पिथौरा, जिला-महासमुन्द
७१७.	,, ,,	शा. उ.मा. विद्यालय गडबेडा, वाया-पिथौरा, जिला - महासमुन्द
७१८.	,, ,,	शा. उच्च.माध्य. विद्यालय रायतुम, जिला - महासमुन्द (छ.ग.)
७१९.	,, ,,	शा. उ.मा. विद्यालय पटेवा, वाया-पिथौरा, जिला - महासमुन्द
७२०.	,, ,,	शा. उ.मा. विद्यालय झलप, वाया-पिथौरा, जिला - महासमुन्द

विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना

मनुष्य का उत्थान केवल सकारात्मक विचारों के प्रसार से करना होगा । — स्वामी विवेकानन्द

❖ क्या आप स्वामी विवेकानन्द के स्वप्नों के भारत के नव-निर्माण में योगदान करना चाहते हैं?

❖ क्या आप अनुभव करते हैं कि भारत की कालजयी आध्यात्मिक विरासत, नैतिक आदर्श और महान संस्कृति की युवकों को आवश्यकता है?

✓ यदि हाँ, तो आइए! हमारे भारत के नवनिहाल, भारत के गौरव छात्र-छात्राओं के चारित्रिक-निर्माण और प्रबुद्ध नागरिक बनने में सहायक 'विवेक-ज्योति' को प्रत्येक पुस्तकालय में पहुँचाने में सहयोग कीजिए। आप प्रत्येक पुस्तकालय में पहुँचाने वाली हमारी इस योजना में सहयोग कर अपने राष्ट्र की सेवा कर सकते हैं। आपका प्रयास हमारे इस महान योजना में सहायक होगा, हम आपके सहयोग की प्रतीक्षा कर रहे हैं –

✍ १. 'विवेक-ज्योति' को विशेषकर भारत के स्कूल, कॉलेज, महाविद्यालय और विश्वविद्यालयों द्वारा युवकों में प्रचारित करने का लक्ष्य है।

✍ २. एक पुस्तकालय हेतु मात्र २१००/- रुपये सहयोग करें, इस योजना में सहयोग-कर्ता के द्वारा सूचित किए गए सामुदायिक ग्रन्थालय, या अन्य पुस्तकालय में १० वर्षों तक 'विवेक-ज्योति' प्रेषित की जायेगी।

✍ ३. यदि सहयोग-कर्ता पुस्तकालय का नाम चयन नहीं कर सकते हैं, तो हम उनकी ओर से पुस्तकालय का चयन कर देंगे। दाता का नाम पुस्तकालय के साथ 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशित किया जाएगा। यह योजना केवल भारतीय पुस्तकालयों के लिये है।

❖ आप अपनी सहयोग-राशि इलेक्ट्रॉनिक मनीआर्डर या एट पार चेक 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम से बनवाकर पत्र के साथ निम्नलिखित पते पर भेज दें, जिसमें 'विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना' हेतु लिखा हो। आप अपनी सहयोग-राशि निम्नलिखित खाते में सीधे जमा कर सकते हैं। आप इसकी सूचना ई-मेल, फोन और एस. एम.एस. द्वारा अपना नाम, पूरा पता, पिन कोड एवं फोन नम्बर के साथ भेजें।

सेन्ट्रल बैंक ऑफ इन्डिया, अकाउन्ट नम्बर : 1385116124, **IFSC CODE :** CBIN0280804

पता **— व्यवस्थापक, विवेक-ज्योति कार्यालय, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,**

रायपुर - 492001 (छत्तीसगढ़), दूरभाष — 09827197535, 0771-2225269, 4036959

ई-मेल : vivekjyotirkmraipur@gmail.com, वेबसाइट : www.rkmraipur.org

विवेक-ज्योति स्थायी कोष

'विवेक-ज्योति' पत्रिका स्वामी विवेकानन्द जी की जन्म-शताब्दी वर्ष के शुभ अवसर पर १९६३ ई. में आरम्भ की गई थी। तबसे यह पत्रिका निरन्तर आध्यात्मिक, सांस्कृतिक और नैतिक विचारों के प्रचार-प्रसार द्वारा समाज को सदाचार, नैतिक और आध्यात्मिक जीवन यापन में सहायता करती चली आ रही है। यह पत्रिका सदा नियमित और सस्ती प्रकाशित होती रहे, इसके लिये विवेक-ज्योति के स्थायी कोष में उदारतापूर्वक दान देकर सहयोग करें। आप अपनी दान-राशि इलेक्ट्रॉनिक मनीआर्डर, ऐट पार चेक या सीधे बैंक के खाते में उपरोक्त निर्देशानुसार भेज सकते हैं। प्राप्त दान-राशि (न्यूनतम रु. २०००/-) सधन्यवाद सूचित की जाएगी और दानदाता का नाम भी पत्रिका में प्रकाशित होगा। रामकृष्ण मिशन को प्रदत्त सभी दान आयकर अधिनियम-१९६१, धारा-८०जी के अन्तर्गत आयकर मुक्त है।

सुदर्शन सोलार...
ऊर्जा अपरंपार !

आधुनिक भारत की बिजली की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए हमारे पास पर्याप्त मात्रा में सौर ऊर्जा उपलब्ध है। प्राकृतिक रुप से उपलब्ध इस स्त्रोत का प्रतिदिन की अपनी आवश्यकताओं के लिये उपयोग करके, अपने बिजली के बिल में भारी पैमाने पर कटौती कर, हम अपने देश को बिजली के निर्माण में आत्मनिर्भर बनाने में सहायता कर सकते हैं।

इस सुन्दर भूमि को सदा हरी-भरी रखने के लिये अपना साथी

भारत का विश्वसनीय सौर ऊर्जा ब्रांड - 'सुदर्शन सौर' !

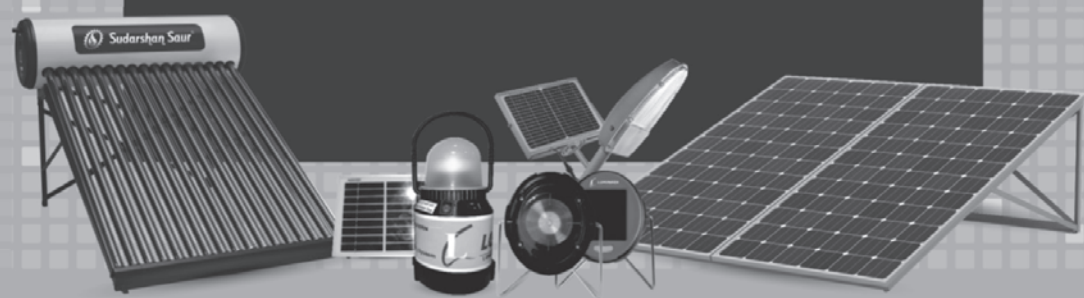

सोलर वॉटर हीटर
24 घंटे गरम पानी के लिए

सोलर लाइटिंग्स
ग्रामीण क्षेत्र में घरेलू उपयोग के लिए

सोलार इलेक्ट्रिसिटी सिस्टम
रुफटॉप सोलार
बिजली उत्पन्न करने के लिए

घर, बंगलोज, हॉस्पिटल्स, हॉटेल्स, इंडस्ट्रीज, कमर्शिअल कॉम्प्लेक्स, इन्स्टिट्यूट्स के लिए उपयुक्त

समझदारी की सोच!

३० साल का प्रदीर्घ अनुभव!

आजीवन सेवा — लाखां संतुष्ट ग्राहक — विस्तृत डीलर नेटवर्क

Sudarshan Saur®

www.sudarshansaur.com | Toll Free 1800 233 4545 | E-mail: office@sudarshansaur.com

।। आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च ।।

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

वर्ष ६२ **अप्रैल २०२४** **अंक ४**

श्रीरामचन्द्र-ध्यानम्

कालाम्भोधर-कान्तिकान्तमनिशं वीरासनाध्यासिनं
मुद्रां ज्ञानमयीं दधानमपरं हस्ताम्बुजं जानुनि।
सीतां पार्श्वगतां सरोरुहकरां विद्युन्निभां राघवं
पश्यन्तं मुकुटाङ्गदादि-विविधाकल्पोज्ज्वलाङ्गं भजे।।

– प्रलयकालीन मेघ-सदृश मनोहर कान्तियुक्त, वीरासन में आसीन, ज्ञानमयमुद्राधारी, आजानु कर-कमलोंवाले, पार्श्वस्थिता कमलतुल्य हाथोंवाली एवं विद्युत्सम कान्तिवाली सीता की ओर दृष्टिपात करते हुये तथा मुकुट, बाहुभूषणादि अनेक अलंकारों से जिनकी सम्पूर्ण देह उद्भासित हो रही है, उन राघव की मैं स्तुति करता हूँ।

पुरखों की थाती

बहूनां चैव सत्त्वानां समवायो रिपुंजयः।
वर्षान्धाराधरो मेघस्तृणैरपि निवार्यते।।८२६।।

– जैसे छोटे-छोटे तिनकों को मिलाकर बना हुआ छप्पर, मूसलाधार वर्षा के जल को रोक देता है, वैसे ही छोटे-छोटे अनेक लोग संगठित हो जाये, तो बलवान शत्रुओं को भी पराजित कर सकते हैं।

बह्वाशी स्वल्पसन्तुष्टः सुनिद्रो लघुचेतनः।
स्वामिभक्तश्च शूरश्च षडेते श्वानतो गुणाः।।८२७।।

– कुत्ते से ये छह गुण सीखने चाहिए – उपलब्ध हो तो खूब खाना, (अभाव हो, तो) थोड़े में सन्तोष कर लेना, गहरी नींद में सोना, (परन्तु) सदा सतर्क रहना, स्वामीभक्ति और वीरता।

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।
बन्धाय विषयासंगो मुक्त्यै निर्विषयं मनः।।८२८।।

– मन ही मनुष्य को बन्धन में डालता है और मन ही उसके मोक्ष का भी कारण है। इन्द्रिय-विषयों में लिप्त रहनेवाला मन बन्धन का कारण है और विषयों से अनासक्त रहनेवाला मन मोक्ष का साधन है।

हिन्दू धर्म में राष्ट्रीय भाव है आध्यात्मिकता : विवेकानन्द

भारत में हिन्दुओं द्वारा कभी धार्मिक उत्पीड़न नहीं हुआ, बल्कि उन्होंने विश्व के सभी धर्मों के प्रति अद्‌भुत आदर का भाव ही रखा। हिब्रू जाति के कुछ लोग जब स्वदेश से भगाये गये थे, तब हिन्दुओं ने उनको शरण दी, जिसके फलस्वरूप मलाबार के यहूदी अभी तक हैं। एक अन्य समय में उन्होंने नष्ट-प्राय ईरानियों के अवशिष्ट अंश का स्वागत अपने देश में किया और वे लोग आज भी हमारे मध्य हमारे एक अंग और प्रीति भाजन, बम्बई के आधुनिक पारसियों के रूप में विद्यमान हैं। ईसा मसीह के शिष्य सेन्ट थामस के साथ आने का दावा करने वाले ईसाई लोगों को भी भारत में रहने तथा अपनी विचारधारा सुरक्षित रखने की अनुमति दी गयी। उन लोगों की एक बस्ती अब तक भारत में है। यह सहिष्णुता का भाव वहाँ न मरा है, न मरेगा, न मर सकता है। (९/१२०-१२१)

सम्भव है कि तुम द्वैतवादी हो और मैं अद्वैतवादी, सम्भव है कि तुम अपने को भगवान का नित्य दास समझते हो और दूसरा यह कहे कि मुझमें और भगवान में कोई अन्तर नहीं है, पर दोनों ही हिन्दू हैं और सच्चे हिन्दू हैं। यह कैसे सम्भव हो सका है? इस प्रश्न का उत्तर जानने के लिए उसी महावाक्य का स्मरण करो – एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति। (५/१३)

हिन्दू मन की यह एक विशेषता है कि वह सदैव अन्तिम सम्भाव्य सामान्यीकरण के लिए अनुसन्धान करता है और बाद में विशेष पर कार्य करता है।

वेद में यह प्रश्न पूछा गया है, कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति? – 'ऐसी कौन सी वस्तु है, जिसका ज्ञान होने पर सब कुछ ज्ञात हो जाता है?' इस प्रकार, हमारे जितने शास्त्र हैं, जितने दर्शन हैं, सबके सब उसी के निर्णय में लगे हुए हैं, जिनके जानने से सब कुछ जाना जा सकता है। (१/५९-६०)

हिन्दू लोग साहसी थे और उन्हें इस बात का श्रेय देना चाहिए कि वे अपनी सभी विचारों को बड़े साहस के साथ सोचते थे – इतने साहस के साथ कि उनके विचार की एक चिन्गारी मात्र से पश्चिम के तथाकथित साहसी तत्त्ववेत्ता डर जाते हैं ! इन आर्य मनीषियों के सम्बन्ध में प्रोफेसर मैक्समूलर ने यह ठीक ही कहा है कि ये लोग इतनी अधिक ऊँचाई तक चढ़े, जहाँ केवल उनके ही फेफड़े साँस ले सकते थे, दूसरों के फेफड़े तो इतनी ऊँचाई में

फट गये होते ! जहाँ भी बुद्धि ले गयी, इन धीर पुरुषों ने उसका अनुरागपूर्वक अनुसरण किया – उसके लिए कोई त्याग उठा न रखा। सम्भव था कि इससे उनके हृदय के चिरपोषित अन्धविश्वास चूर-चूर हो जाते, पर उन्होंने इसकी परवाह न की, यह भी परवाह न की कि समाज उनके सम्बन्ध में क्या सोचेगा, क्या कहेगा ! वे तो साहसी थे। उन्होंने जिसे ठीक और सत्य समझा, उसी की चर्चा की और प्रचार किया। (१/२४३)

हिन्दू धर्म में एक राष्ट्रीय भाव देखने को मिलेगा वह है आध्यात्मिकता। और किसी धर्म में – संसार के किन्हीं अन्य धर्मग्रन्थों में ईश्वर की परिभाषा करने में इतनी अधिक शक्ति लगायी गयी है, ऐसा देखने को नहीं मिलता। उन्होंने आत्मा का आदर्श निर्दिष्ट करने की चेष्टा इस प्रकार की है कि कोई पार्थिव संस्पर्श इसको कलुषित नहीं कर सकता। आत्मा दिव्य है और इस अर्थ से उसमें कभी मानवीय भाव आरोपित नहीं किया जा सकता।

सम्पादकीय

शौर्यशाली और धैर्यशाली श्रीराम

भगवान श्रीराम भारतीय संस्कृति के, लोकमानस के परमप्रेमास्पद और अभीष्ट हैं। एक ओर वे भारतीय साहित्य के धीरोदात्त नायक हैं, तो दूसरी ओर सर्वत्यागी ऋषि-मुनिगणपूजित, वन्दित एवं उनके आराध्य हैं। योगी योग के द्वारा, ज्ञानी ज्ञान के द्वारा और भक्त अपनी भक्ति के द्वारा उनका अपने अन्तस्तल में बोध कर अपने को कृतार्थ मानते हैं। इनके अतिरिक्त वे इन सबके परे अगम्य भी हैं – योगिनामप्यगम्यम्। किन्तु अपने अवतारत्व के प्रयोजन की सिद्धि हेतु जब वे भारत की पावन धरा अयोध्या में आविर्भूत होकर अपनी लीलाएँ करना प्रारम्भ करते हैं, तो उन लीलाओं के द्वारा निःसृत शिक्षायें मानव के जीवन को महान सम्बल और सिद्धि-प्राप्ति का सूत्र प्रदान करती हैं। उनकी लोक-लीला में दशकं धर्मलक्षणम् की स्पष्ट झलक और लोकव्यवहार का कुशल समुच्चय दृष्टिगोचर होता है। उनके जीवन के सर्वसद्गुणसमुच्चयों में से मात्र दो की यहाँ चर्चा करते हैं, जिसे सामान्य मानव भी अपने जीवन में अपनाकर जीवन में सफल हो सकता है। वे दो सद्गुण हैं – शौर्य और धैर्य।

शौर्यशाली श्रीराम

हिन्दी कोषकार के अनुसार शौर्य का अर्थ होता है – शूरता, वीरता, पराक्रम। श्रीराम की शूरता, वीरता जगत प्रसिद्ध है। श्रीराम का नाम लेकर, उनकी शौर्यगाथा गाकर जो स्वयं शूर-वीर हो गया, जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण श्रीहनुमानजी महाराज हैं। भगवान श्रीराम का शौर्य, उनकी शूर-वीरता केवल दानवों के साथ युद्ध क्षेत्र में ही नहीं दिखती, अपितु जीवन के आन्तरिक द्वन्द्वों में भी संघर्ष कर उन पर विजय दृष्टिगोचर होती है। वे अन्तर्बाह्य दोनों संग्रामों में शौर्य का परिचय देते हैं। दुर्वासा ऋषि क्रोधी थे। परशुरामजी भी अवतार थे, लेकिन क्रोधी थे। वे क्रोध पर संयम नहीं कर सके। किन्तु श्रीराम ने अपने जीवन में किसी भी दुर्गुण को स्थान नहीं दिया, किसी बहाने उन्हें अभिव्यक्त नहीं होने दिया।

जब विश्वामित्रजी के यज्ञ को राक्षस विध्वंस करने लगे, तब उन्होंने अयोध्या जाकर राजा दशरथजी से यज्ञ के रक्षार्थ उनके पुत्र राम-लक्ष्मण को माँगा। पहले तो राजा इन बालकों को देने को तत्पर नहीं हुये, किन्तु वसिष्ठजी के बहुत समझाने के बाद दशरथजी ने ममता त्यागकर दोनों पुत्रों को मुनि को सौंप दिया। श्रीराम ने अल्पायु में ही बड़े राक्षसों का वध कर मुनि के यज्ञ की रक्षा की। वहाँ उनके बाह्य रण-शौर्य का परिचय मिलता है। विश्वामित्र मुनि के संग वन हेतु प्रस्थान करते समय गोस्वामीजी ने लिखा –

पुरुषसिंह दोउ बीर हरषि चले मुनि भय हरन।
कृपासिंधु मतिधीर अखिल बिस्व कारन करन।।[१]

ताड़का जैसी राक्षसी का भगवान ने मार्ग में वध किया। सुबाहु आदि राक्षसों का वध किया। ऐसे शौर्यशाली हैं श्रीराम !

भगवान अपने चारों भाइयों के साथ खेलते, खाते और विभिन्न प्रकार की क्रीड़ायें करते हैं, लेकिन जब उनके पिता श्री दशरथजी ने उन्हें राजा बनाने की घोषणा की, तो वे सोचने लगे –

जनमें एक संग सब भाई।
भोजन सयन केलि लरिकाई।।
करनबेध उपबीत बिआहा।
संग संग सब भये उछाहा।।
बिमल बंस यहु अनुचित एकू।
बंधु बिहाइ बड़ेहि अभिषेकू।।[२]

यहाँ उन्होंने राज्य-लोभ की वृत्ति पर विजय प्राप्त कर उदात्त शौर्य का परिचय दिया। दूसरा उन्हें राज्य न मिलकर १४ वर्ष का अयाचित, अप्रत्याशित वनवास मिला, तो भी कोई दुख नहीं, अपितु श्रीराम समता में स्थित हैं। यहाँ उन्होंने अप्रत्याशित प्रतिकूल परिस्थिति में समता बनाये रखने का शौर्य प्रस्तुत किया। यह कार्य रणभूमि के संग्राम, स्थूल रण-संग्राम से कहीं अधिक प्रबल होता है, जिस पर

अपने आभ्यन्तरिक शौर्य शक्ति से विजय प्राप्त कर श्रीराम ने मानव को विषम परिस्थिति में संतुलित जीवन जीने का संदेश दिया।

पिताजी श्रीराजा दशरथजी की मृत्यु के बाद चित्रकूट जाकर सभी भाइयों और प्रजा, मंत्री, मुनियों द्वारा अयोध्या का राजा बनने का प्रस्ताव देने पर श्रीराम उसे प्रेम से अस्वीकार कर भाई भरत को ही राज्य सौप देते हैं। नहीं तो वे धर्मस्थापना हेतु राज्य-शक्ति की उपयोगिता दिखाकर राज्य स्वीकार कर सकते थे। लेकिन नहीं, उन्होंने ऐसा नहीं किया। इसलिए श्रीराम लोक में अलौकिक हैं, सामान्य में असामान्य और विशेष हैं। क्योंकि उनके जीवन में कहीं किसी प्रकार की कोई अमर्यादित अभिव्यक्ति नहीं है।

भगवान श्रीराम के समर-भूमि के रूप का वर्णन करते हुये तुलसीदासजी लिखते हैं –

संग्राम भूमि बिराज रघुपति अतुल बल कोसल धनी।
श्रम बिंदु मुख राजीव लोचन अरुन तन सोनित कनी।।
भुज जुगल फेरत सर सरासन भालु कपि चहु दिसि बने।
कह दास तुलसी कहि न सक छबि सेष जेहि आनन घने।।[३]

– अतुलनीय बलशाली कोसलपति श्रीरघुनाथजी रणभूमि में सुशोभित हैं। मुख पर पसीने की बूँदें हैं, कमलनयन लाल हैं, शरीर पर रक्त-कण हैं, दोनों हाथों से धनुष-बाण घुमा रहे हैं। उनके चारों ओर बन्दर-भालु सुशोभित हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि प्रभु की इस छबि का वर्णन सहस्त्र मुखवाले शेषजी भी नहीं कर सकते हैं।

रावण के द्वारा किये जा रहे यज्ञ को बानरी सेना द्वारा विध्वंस करने के बाद रावण क्रोधित होकर श्रीराम से युद्ध करने रणभूमि की ओर चला। इधर से भगवान श्रीराम भी युद्ध करने चले। उस समय के श्रीराम के शौर्यरूप का वर्णन तुलसीदासजी ने किया है –

सारंग कर सुंदर निषंग सिलीमुखाकर कटि कस्यो।
भुजदंड पीन मनोहरायत उर धरासुर पद लस्यो।।
कह दास तुलसी जबहिं प्रभु सर चाप कर फेरन लगे।
ब्रह्मांड दिग्गज कमठ अहि महि सिंधु भूधर डगमगे।।[४]

– प्रभु ने हाथ में शार्ङ्गधनुष लेकर कमर में बाणों की खान सुन्दर तरकस कस लिया। उनके भुजदण्ड पुष्ट हैं और मनोहर चौड़ी छाती पर ब्राह्मण भृगुजी का चरण-चिह्न सुशोभित है। तुलसीदास कहते हैं, ज्यों ही प्रभु हाथ में धनुष-बाण लेकर घुमाने लगे, त्यों ही ब्रह्माण्ड, दशो दिशाओं के हाथी, कच्छप, शेषजी, पृथ्वी, समुद्र और पर्वत सभी डगमगा उठे।

भगवान ने अपने अद्भुत शौर्य और पराक्रम से मारीच, सुबाहु, खर-दूषण, ताड़का, कुम्भकर्ण और रावण का वध किया। ऐसे शौर्यशाली हैं हमारे श्रीराम। उनकी इस शौर्यवृत्ति को अपनाकर हम भी अपने जीवन में बाह्याभ्यन्तर शत्रुओं और दुर्गुणों पर विजय प्राप्त कर सकते हैं।

श्रीराम का धैर्य

मानव जीवन में सफलता एवं शान्ति हेतु धैर्य की बहुत आवश्यकता होती है। धैर्य के अभाव में मानव बहुत-से सुअवसरों को खो देता है। बाह्याभ्यन्तर संग्राम में भी शौर्य और धैर्य की सहायता से विजय प्राप्त किया जाता है। श्रीराम शूर-वीर होने के साथ-साथ बहुत धैर्यशाली भी हैं। श्रीराम का धैर्य उनके जीवन का अप्रतिम आभूषण है। जब लंका युद्ध के समय श्रीराम को रथहीन और रावण को रथारूढ़ देखकर विभीषणजी ने अधीर होकर श्रीराम से पूछा – हे प्रभो ! आपके पास रथ, शरीर का कवच और जूते भी नहीं हैं, तब आप कैसे बलवान रावण को जीत पाएँगे? तब भगवान श्रीराम ने कहा –

सुनहु सखा कह कृपानिधाना।
जेहिं जय होइ सो स्यंदन आना।।
सौरज धीरज तेहि रथ चाका।
सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका।।[५]

– हे सखे, सुनो, जिससे विजय प्राप्त होती है, वह रथ दूसरा है। शौर्य और धैर्य उस रथ के पहिये हैं। सत्य, शील, सदाचार उसकी ध्वजा और पताका हैं। इस प्रकार जीवन रूपी विजय-रथ के दो पहिये हैं – शौर्य और धैर्य।

ऐसे तो सर्वत्र भगवान की धीर-गम्भीर वाणी और सौम्य चलन-चलन है। लेकिन उनमें धैर्य तब दृष्टिगोचर होता है, जब समुद्र-पार लंका जाने का प्रसंग आता है। समुद्र कैसे पार करें? विभिन्न लोगों ने विभिन्न प्रकार के परामर्श दिये। विभीषणजी ने समुद्र से प्रार्थना कर मार्ग माँगने का परामर्श दिया। लेकिन लक्ष्मणजी को यह अच्छा नहीं लगा। उन्होंने कहा कि देवताओं का क्या विश्वास है ! मन में क्रोध कीजिये और समुद्र को सुखा दीजिये। श्रीराम हँसकर कहते हैं –

शेष भाग पृष्ठ १७३ पर

श्रीरामचन्द्र जयन्ती विशेष

श्रीराम और श्रीरामकृष्ण

स्वामी निखिलात्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी निखिलात्मानन्द जी महाराज, प्रयागराज, नारायणपुर, जयपुर के सचिव थे। उन्होंने यह व्याख्यान श्रीरामकृष्ण आश्रम, अमरकंटक में दिया था, जिसे विवेक-ज्योति पत्रिका हेतु प्रकाशित किया जा रहा है।)

(गतांक से आगे)

इसी प्रकार ब्रह्मा, विष्णु, महेश एक बार नहीं अनेक बार आते हैं और कहते हैं – राजन वर माँगों, वर माँगो, वर माँगो। महाराज मनु कहते हैं – नहीं प्रभु ! हम आपसे वर नहीं लेंगे, हम तो उससे वर लेंगे, जिसके लिए हम तपस्या कर रहे हैं। किनके लिए तपस्या कर रहे थे महाराज मनु? गोस्वामीजी लिखते हैं –

अगुन अखंड, अनंत अनादी।
जेहि चिंतहिं परमारथबादी।
नेति नेति जेहि बेद निरूपा।
निजानंद निरुपाधि अनूपा।। १/१४३/४-५

गोस्वामीजी कहते हैं – जो अगुण, अखण्ड, अनन्त और अनादि हैं, जिन भगवान के बारे में वेद कहते हैं नेति, नेति – यह नहीं, यह नहीं, ऐसा कहकर ब्रह्म का वर्णन करते हैं, ऐसे जो भगवान हैं, वे भक्तों के लिए नर-देह धारण करके आते हैं –

ऐसेउ प्रभु सेवक बस अहई।
भगत हेतु लीला तनु गहई।। १/१४३/७

अगर वेदों की यह बात सत्य है, तो कहते हैं –

जौं यह बचन सत्य श्रुति भाषा।
तौ हमार पूजिहि अभिलाषा।। १/१४३/८

अगर वेदों का यह वचन सत्य है, तो प्रभु हम आपका दर्शन चाहते हैं, आप हमारी इच्छा पूरी कीजिए। अभी तक ब्रह्मा, विष्णु, महेश आये थे, अब आकाशवाणी होती है –

मागु मागु बरु भै नभ बानी। १/१४४/६

– राजा वर माँगो, वर माँगो। महाराज मनु ने कहा – प्रभु! हम आपका दर्शन चाहते हैं। आकाशवाणी ने कहा – देखो भाई ! हमारा कोई रूप और नाम तो है नहीं। तुम जो रूप दोगे, वह रूप धारण करके आयेंगे, जो नाम दे दोगे, वह नाम धरके आयेंगे। बोलो किस रूप में देखना चाहते हो? महाराज मनु ने कहा – ठीक है प्रभु ! हम आपको बताते हैं, हम आपको किस रूप में देखना चाहते हैं? महाराज मनु किस रूप में देखना चाहते थे? वे कहते हैं –

जो सरूप बस सिव मन माँहीं।
जेहिं कारन मुनि जतन कराहीं।।
जो भुसुंडि मन मानस हंसा।
सगुन अगुन जेहि निगम प्रसंसा।।
देखहि हम सो रूप भरि लोचन।
कृपा करहु प्रनतारति मोचन।। १/१४५/४-६

– भगवान का जो रूप भगवान शंकर के हृदय में सतत विद्यमान रहता है, भगवान का जो रूप कागभुसुंडीजी के हृदय रूपी मानसरोवर में सतत विचरण करता है, प्रभु ! हम उस रूप को देखना चाहते हैं –

देखहिं हम सो रूप भरि लोचन।
कृपा करहु प्रनतारति मोचन।। १/१४५/६

भगवान शंकर के हृदय में भगवान का कौन-सा रूप है? श्रीराम ही भगवान शंकर के हृदय में सतत विद्यमान हैं। श्रीराम ही कागभुसुंडीजी के हृदय में सतत विद्यमान हैं। महाराज मनु ने कहा – प्रभु ! हम उसी रूप का दर्शन चाहते हैं। तुरन्त भगवान राम महाराज मनु के सामने अपनी शक्ति सीताजी को लेकर प्रगट हो गये। कहते हैं –

भगत बछल प्रभु कृपानिधाना।
बिस्वबास प्रगटे भगवाना।। १/१४५/८

कौन प्रगट हुए? कहते हैं, जो भक्तवत्सल हैं, जो कृपा के सागर हैं, वे प्रगट हो गये। वे कहाँ रहते हैं? बैकुंठ में ही नहीं, विश्ववास – सारे विश्व में जो निवास करनेवाले भगवान हैं, वे राम रूप में अपनी शक्ति सीताजी को लेकर महाराज मनु के सामने प्रगट हो गये। महाराज मनु से कहते हैं – क्यों महाराज, अब तो वरदान लोगे न ! महाराज मनु और शतरूपाजी प्रणाम कर कहते हैं – अवश्य वरदान लेंगे प्रभु !

– बोलो राजा क्या चाहिए? महाराज मनु कहते हैं – प्रभु! एक छोटी-सी प्रार्थना है। वे कहते हैं –

दानि सिरोमनि कृपानिधि, नाथ कहउँ सतिभाउ।
चाहउँ तुम्हहि समान सुत, तुम सन कौन दुराउ।।
१/१४९

प्रभु ! आप तो दानी शिरोमणि हैं, कृपा के सागर हैं, अब हम आपसे क्या छिपायें? हम आप जैसा पुत्र चाहते हैं और कुछ नहीं ! 'चाहउँ तुम्हहि समान सुत...।' भगवान राम ने कहा – अरे राजन ! ये तो बड़ा कठिन वरदान माँग लिया तुमने ! मैं अपने जैसा पुत्र खोजने कहाँ जाऊँ? मुझे तो मालूम नहीं, कहाँ मेरे जैसा पुत्र होगा? अच्छा राजा ! एक बात कहुँ, तो मानोगे? कहते हैं –

आपु सरिस खोजौं कहँ जाई।
नृप तव तनय होब मैं आई।। १/१४९/२

राजा, मैं अपने जैसा पुत्र खोजने कहाँ जाऊँ? मैं ही तुम्हारा पुत्र होकर के आ जाऊँगा। महाराज मनु यही तो चाहते थे, पर जगत्पिता से कैसे कहें कि आप मेरे पुत्र बन जाइये। जब भगवान राम ने कहा – मैं ही तुम्हारा पुत्र होकर के आऊँगा, तब महाराज मनु गद्गद् हो जाते हैं ! कहते हैं – प्रभु ! मैं यही तो चाहता था, पर साहस नहीं हो रहा था कि कैसे आपसे कहूँ? भगवान तथास्तु कहते हैं। फिर शतरूपाजी से भगवान कहते हैं – देवी ! आप भी कुछ माँग लीजिए। बोलिए आपको क्या चाहिए? शतरूपाजी कहती हैं – प्रभु, जो वरदान आपसे महाराज ने माँगा है, वह सभी प्रकार से मुझे अत्यन्त प्रिय लगा है –

जो बरु नाथ चतुर नृप माँगा।
सोइ कृपाल मोहि अति प्रिय लागा।। १/१४९/४
जे निज भगत नाथ तव अहहीं।
जो सुख पावहिं जो गति लहहीं।। १/१४९/८
सोइ सुख सोइ गति सोइ भगति सोइ निज चरण सनेहु।
सोइ बिबेक सोइ रहनि प्रभु हमहि कृपा करि देहु।।
१/१५०

शतरूपाजी कहती हैं – प्रभु ! राजा ने जो वर माँगा है, वह सभी प्रकार से मुझे अत्यन्त प्रिय है। आपके भक्तों को जैसा सुख मिलता है, जैसी गति, जैसी भक्ति मिलती है, वैसा ही सुख, वैसी ही भक्ति, वैसी ही गति मुझे मिले, पर एक चीज आप मुझे विशेष करके दीजिए। क्या? बोले –

सोइ बिबेक सोइ रहनि प्रभु हमहि कृपा करि देहु।।

मेरा यह ज्ञान सब समय बना रहे कि आप साक्षात् नारायण मेरे पुत्र के रूप में आ रहे हैं। यह आप मुझे विशेष रूप से दीजिए। भगवान ने तथास्तु कहा। महाराज मनु से कहा – महाराज ! देवी ने तो ज्ञान माँगा है, आपको भी ज्ञान चाहिए क्या? महाराज मनु कहते हैं – ज्ञान–वान आप उन्हें दीजिए प्रभु ! मैं आपको केवल अपने पुत्र के रूप में देखना चाहता हूँ, भगवान के रूप में नहीं। जो भी ज्ञान देना हो, वह उन्हें दीजिए। महाराज मनु ज्ञान के प्रतीक थे, किन्तु वे भक्ति माँगते हैं और शतरूपाजी जो भक्ति की प्रतीक हैं, वे ज्ञान माँगती हैं। दोनों सोचते हैं, थोड़ा अपने भाव को बदलकर देखें, उसका आनन्द कैसा होता है। भगवान कहते हैं, जब आप दोनों दशरथ और कौशल्या के रूप में अवतरित होंगे, तब मैं आपके पुत्र के रूप में आऊँगा। सचमुच भगवान राम का अवतरण इस प्रकार होता है।

भगवान श्रीरामकृष्ण का अवतरण

भगवान श्रीरामकृष्ण का अवतरण किस प्रकार होता है? हम सभी जानते हैं, उनके पिता खुदीरामजी बंगाल के एक छोटे-से ग्राम कामारपुकुर में रहते थे। उनकी पत्नी थी चन्द्रामणि देवी। एकबार खुदीराम अपने पितरों का श्राद्ध-पूजन करने के लिए गयाधाम को जाते हैं। वे गयाधाम में जाकर भगवान विष्णु की आराधना करते हैं, पितरों का पिंडदान, श्राद्ध करते हैं। मन में बड़ा श्रद्धा का भाव है । जब रात में खुदीरामजी सोये हुए हैं, तब देखते हैं, भगवान विष्णु उनके स्वप्न में प्रगट हो गये। गयाधाम में भगवान विष्णु को ही गदाधर कहा जाता है। गदाधर प्रगट होकर कहते हैं – खुदीराम ! मैं तुम्हारी तपस्या से, तुम्हारी पूजा से अत्यन्त सन्तुष्ट हूँ। इसीलिए मैं तुम्हें वरदान देता हूँ, मैं तुम्हारे पुत्र के रूप में आऊँगा। खुदीराम यह सुनकर के गद्गद हो जाते हैं। वे कहते हैं – प्रभु ! आप मेरे पुत्र के रूप में आयेंगे, इससे बड़ा सौभाग्य क्या हो सकता है? परन्तु प्रभु ! मैं एक निर्धन ब्राह्मण हूँ। आप मेरे यहाँ आयेंगे, मैं आपको भलीभाँति खिला नहीं पाऊँगा, पहना नहीं पाऊँगा। आपको कष्ट होगा। यही दु:ख है मुझे ! भगवान विष्णु कहते हैं – नहीं खुदीराम ! तुम कोई चिन्ता मत करो, तुम जो खिलाओगे, वह मैं खाऊँगा, जो पहनाओगे, वह मैं पहनूँगा। तुम किसी प्रकार की चिन्ता न करो, मैं तुम्हारे पुत्र के रूप में आऊँगा। गद्गद हो जाते हैं खुदीरामजी। खुदीरामजी को गयाधाम में ऐसा दर्शन होता है। इधर कामारपुकुर में उनकी पत्नी चन्द्रामणि देवी अपने घर के पास के शिवमन्दिर के

निकट खड़ी होकर अपनी सखी धनी लोहारिन से बात कर रही थीं। कामारपुकुर में वह शिवमन्दिर अभी भी विद्यमान है। बात करते-करते चन्द्रामणि देखती हैं कि शिवमन्दिर से मानों एक प्रकाश का पुंज बड़ी तेजी से बढ़ता हुआ उनकी ओर चला आ रहा है। वह प्रकाश का गोला आकर के उनके पेट में समा गया। उन्होंने अपनी सखी धनी से कहा, मुझे लग रहा है, मुझे गर्भ ठहर गया है। धनी ने कहा – अरे ! यह सब तुम्हारे मन का भ्रम है। यह बात किसी दूसरे से नहीं कहना, सभी तुम्हारी हँसी उड़ायेंगे। उस समय चन्द्रादेवी की आयु लगभग पचास वर्ष की हो रही होगी। उधर खुदीरामजी गया धाम से लौट कर आते हैं। चन्द्रादेवी सारी बातें उनसे कह सुनाती हैं। सुनते ही खुदीराम कहते हैं – अरे, घबड़ाने की कोई बात नहीं है। गयाधाम में उन्हें जो स्वप्न हुआ था, उसे कहकर चन्द्रादेवी को सुनाते हैं। वे कहते हैं – भगवान हमारे यहाँ पधारने वाले हैं। तुम कोई चिन्ता मत करो। प्रभु का अवतरण होनेवाला है।

भगवान जब आते हैं, तो सामान्य मनुष्यों जैसे नहीं आते हैं। सामान्य मानव का जन्म माता–पिता के संयोग से होता है, किन्तु अवतार का विशेष रूप से अवतरण होता है। इसीलिए भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं – **जन्म कर्म च मे दिव्यं एवं यो वेत्ति तत्त्वतः।** – अर्जुन ! मेरा जन्म भी दिव्य होता है, कर्म भी दिव्य होते हैं। जो मेरे जन्म-कर्म को तत्त्व से जान लेता है, उसका पुर्नजन्म नहीं होता। वह मुझे ही प्राप्त होता है। अवतारों का जो जन्म होता है, हम जैसे मनुष्यों जैसा नहीं होता। जितने भी अवतार हैं, उनका जन्म दिव्य रूप से होता है।

भगवान राम का जन्म कैसे हुआ? त्रेतायुग में जब मनु और शतरूपा दशरथ और कौशल्या के रूप में थे, तब उनकी कोई सन्तान नहीं हुई। दशरथजी पुत्रेष्टि यज्ञ करते हैं। अग्निदेव उस अग्नि से खीर का पात्र लेकर प्रगट होते हैं और महाराज दशरथ से कहते हैं – यह खीर अपनी रानियों को खिलाइये, आपको चार पुत्रों की प्राप्ति होगी। सचमुच उसके फलस्वरूप श्रीराम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न का जन्म होता है। जितने भी अवतार हुए उनका जन्म उसी विलक्षण रूप से होता है।

भगवान कृष्ण का जन्म कैसे हुआ? भगवान कृष्ण के माता-पिता वसुदेव और देवकी उस समय कारागार में थे। वहाँ भगवान कृष्ण अपने पिता के सामने प्रकट होकर बताते हैं कि मैं आपके पुत्र के रूप में आ रहा हूँ। उसके बाद ही भगवान कृष्ण का जन्म हुआ !

भगवान बुद्ध का जन्म कैसे हुआ? भगवान बुद्ध की माता मायादेवी अपने मायके लुम्बिनी में थीं। एक दिन अपने उद्यान में घूम रही थीं। वे घूमते-घूमते एक छोटे-से अत्यन्त दिव्य हाथी को देख रही हैं। इतना दिव्य हाथी कहाँ से आ रहा है? देखते-देखते वह हाथी उनके पेट में समा जाता है। मायादेवी को अनुभव होता है, जैसे उन्हें गर्भ ठहर गया हो ! इसलिये जो अवतार आते हैं, वे सामान्य मनुष्यों जैसे नहीं आते, बहुत विलक्षण रूप से आते हैं।

भगवान राम कैसे प्रगट हुए? जब राजा दशरथ ने वह खीर अपनी रानियों को दिया, तो कौशल्याजी, सुमित्राजी और कैकेयीजी सबने वह खीर खायी। जब भगवान राम का जन्म होता है, तो वह भी विलक्षण होता है। कौशल्याजी देखती हैं, भगवान उनके सामने चतुर्भुज रूप में प्रगट हो गये। गोस्वामीजी लिखते हैं –

भये प्रगट कृपाला, दीन दयाला कौशल्या हितकारी।
हर्षित महतारी, मुनि मन हारि, अद्भुत रूप निहारी।।
लोचन अभिरामा, तनु घनश्यामा, निज आयुध भुज चारी।
भूषण बनमाला, नयन बिसाला सोभा सिंधु खरारी।।

भगवान अपने चतुर्भुज रूप में प्रगट हो गये। सुन्दर विशाल लोचन, घनश्याम शरीर, हाथ में शंख, चक्र, गदा और पद्म है, माला विभूषित भगवान कौशल्या माँ के सामने प्रगट हो गये। माँ देखकर आश्यर्चचकित हो जाती है। – अरे प्रभु ! आप कौन हैं? किसलिए आये हैं? किसने आपको बुलाया है? भगवान हँसते हुए कहते हैं – देवी ! मैं अपनी इच्छा से इस रूप में नहीं आया हूँ। अरे, आपने ही कहा था कि जब मैं आपके पुत्र के रूप में आऊँ, तो आपका ये विवेक ज्ञान बना रहे कि मैं साक्षात् नारायण आपके पुत्र के रूप में आ रहा हूँ। इसीलिए मैंने ये चतुर्भुज रूप धारण किया है देवी ! अपनी इच्छा से ये रूप धारण नहीं किया है। यही बताने के लिए कि मैं नारायण आपके पुत्र के रूप में आ रहा हूँ। माँ कहती हैं – ठीक है प्रभु ! ठीक है, आपने मुझे ये ज्ञान दे दिया कि आप साक्षात् नारायण मेरे पुत्र के रूप में आ रहे हैं। बस अब तुरन्त आप इस रूप को त्याग दीजिए। वे कहती हैं – **(क्रमशः)**

श्रीरामचन्द्र जयन्ती विशेष

मित्रों के मित्र श्रीराम

राजकुमार गुप्ता, वृन्दावन

मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम जीवन के प्रत्येक सम्बन्ध को निभाने में आदर्श हैं। वे आदर्श बड़े भाई, आदर्श पति, आदर्श पुत्र, आदर्श राजा तथा एक आदर्श मित्र हैं। किसी भी दृष्टिकोण से देखिये, भगवान राम का जीवन आदर्शों की कसौटी पर खरा उतरता है। इस लेख में हम भगवान श्रीराम की मित्रता की चर्चा करेंगे और यह देखने का प्रयत्न करेंगे कि वे एक सर्वश्रेष्ठ मित्र भी हैं। वैसे तो राम के सम-वयस्क सब अयोध्यावासी पुरुष उनको अपना मित्र मानते हैं, लेकिन रामायण के तीन पात्रों को भगवान के मित्र होने का गौरव प्राप्त है। पहले निषादराज गुह, दूसरे वानरराज सुग्रीव और तीसरे दशानन के लघु भ्राता लंकापति विभीषण। इन तीनों की मित्रता की समीक्षा हम यहाँ पर करेंगे।

१. निषादराज गुह : निषादराज गुह अयोध्या के निकट शृंगवेरपुर के निवासी हैं। उनके पिता महाराज दशरथ के अधीनस्थ निषादों के राजा हैं। बचपन में ही बालक गुह की मित्रता श्रीराम से हो जाती है। कथा इस प्रकार है – बालक गुह अपने पिता के साथ अयोध्या आते हैं। वे चार जोड़ी पादुकायें महाराज दशरथ के चारों पुत्रों को भेंट देने के लिए लेकर आते हैं। पादुकायें किनारे रखकर वे अपने पिता के साथ सरयूजी में स्नान करने लगते हैं। उधर प्रभु श्रीराम को प्रेम से लाई गई भेंट को स्वीकार करने की त्वरा है। वे स्वयं अपने तीनों भाइयों लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न के साथ सरयू किनारे आकर पादुकायें पहनकर महाराज दशरथ के पास चले जाते हैं।

स्नानोपरान्त निषादराज जब बालक गुह को लेकर महाराज दशरथ से मिलते हैं, तो वहाँ चारों राजकुमारों को अपनी लाई हुई पादुकायें पहने देखकर अति प्रसन्न हो जाते हैं। वहीं पर बालक गुह को भगवान राम की मित्रता व प्रेम प्राप्त होता है।

भगवान राम जब कुछ बड़े हो जाते हैं, तब धनुष-बाण लेकर चारों भाई व मित्र गुह के साथ शिकार खेलने वन में जाते हैं। श्री सुदर्शन सिंह चक्र जी की रामायण में एक अन्य घटना का वर्णन है – बालक गुह राम, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न के साथ अयोध्या के निकटवर्ती वनों में शिकार खेलने जाते हैं। जंगल में एक बूढ़ा सिंह दिखता है। श्रीराम उसे अपनी शिकार निश्चित कर उसका पीछा करते हैं। सिंह एक झाड़ी में छिपकर श्रीराम की आँखों से ओझल हो जाता है। श्रीराम उसे ढूँढ़ते-ढूँढ़ते सिंह के अति निकट चले जाते हैं। वह राम के ऊपर झपटने ही वाला है, तभी लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न व गुह की दृष्टि सिंह पर पड़ती है। तीनों भाई सहम जाते हैं। क्योंकि श्रीराम सिंह को अपना शिकार निश्चित कर चुके हैं। उसे मारना राम का अपमान होगा, यह सोचकर देखते ही रहते हैं। पर मित्रता में ऐसा धैर्य कहाँ ! गुह आगे बढ़कर तलवार से सिंह की गर्दन काट देते हैं। तीनों भाइयों को गुह की अधीरता बहुत खली, परन्तु श्रीराम ने गुह को गले से लगा लिया। श्रीराम ने मित्र को बधाई दी। जो सबका रक्षक है, गुह ने उसकी रक्षा की।

वनवास के लिए जाते समय प्रभु राम पहले शृंगवेर पुर पहुँचते हैं। तब तक गुह निषादों के राजा बन चुके थे। श्रीराम के वनवास के समाचार से उन्हें बहुत दुख हुआ। उन्होंने अपना शृंगवेरपुर का राज्य राम को अर्पित करते हुए कहा – आप इस राज्य को सम्भालिए तथा हम सेवकों को सेवा की आज्ञा दीजिए। प्रभु राम तो वन को चले गये। बाद में जब श्रीभरतजी चतुरंगी सेना लेकर श्रीराम को मनाने चित्रकूट को जाते समय शृंगवेरपुर पहुँचते हैं, तब निषादराज

गुह को यह भ्रम हो जाता है कि भरत श्रीराम को वन में एकाकी देखकर मारने जा रहे हैं, जिससे वे (भरत) अयोध्या का निष्कंटक राज्य पा सकें। गुह ने अपना कर्तव्य निश्चित कर लिया, लगभग ५०० सैनिकों के बल पर भरतजी की चतुरंगिनी सेना से लोहा लेने का संकल्प कर लिया। उससे उनकी मृत्यु निश्चित थी, परन्तु धन्य हैं निषाद-राज गुह, जिन्होंने मित्र के लिए अपने जीवन की कुर्बानी देने में जरा भी हिचकिचाहट नहीं दिखाई। उन्होंने मित्र के लिए जीना, मित्र के लिए मरना, इस नियम को सत्य करके दिखाया। बाद में भ्रम दूर होने पर राम के नाते से गुह ने भरतजी का सत्कार किया।

अब प्रभु श्रीराम की ओर से मित्रता का निर्वाह देखिए – वनवास से लौटते समय गुह से मिलकर गये, जबकि भरतजी को एक-एक पल कल्प के समान हो रहा था। प्रभु ने भरत जैसे भाई से भी मित्र गुह को ऊपर रखा। जब प्रभु राम अयोध्या के राजा हुए, तब केवल निषाद-राज गुह से ही कहा – ''**सदा रहेउ पुर आवत जाता**।'' यह बात सुग्रीवजी व विभीषणजी से नहीं कही गई। धन्य है प्रभु श्रीराम और उनके मित्र निषाद-राज गुह। मित्रता में जाति व वर्ण इत्यादि की सीमायें टूट जाती हैं, यह मर्यादा पुरुषोत्तम ने करके दिखाया।

२. वानर–राज सुग्रीव : सुग्रीवजी से श्रीराम की भेंट परिस्थितिवश होती है। दोनों अपने राज्य से निर्वासित हैं। दोनों की पत्नी का हरण हुआ है। दोनों के शत्रु परम बलशाली क्रमशः वानर-राज बाली व लंकापति रावण हैं। श्रीराम ने सुग्रीव से अग्नि को साक्षी देकर मित्रता की और उसके शत्रु वानर-राज बाली का वध करके सुग्रीव का राज्य व पत्नी उसे दिलाई।

सुग्रीवजी की दो घटनायें उल्लेखनीय हैं कि किस प्रकार उन्होंने राम से मित्रता का निर्वाह किया।

(अ) जब श्रीराम लंका-विजय के लिये वानर सेना सहित सुबेल पर्वत पर पहुँचे। तो वहाँ से लंका में रावण का दर्शन हुआ। रावण को देखकर सुग्रीवजी अपने को रोक न सके व छलांग लगाकर रावण के सम्मुख पहुँच कर उसे ललकारा। भयंकर द्वंद्व युद्ध हुआ, जिसमें सुग्रीव के प्राण ही संकट में पड़ गये थे। रावण ने राक्षसी माया का प्रयोग किया था। तब सुग्रीव लौटकर प्रभु राम के समक्ष आ गये। मित्र के लिए उन्होंने अपने जीवन की भी परवाह नहीं की।

(ब) लंका-युद्ध के दौरान रावण ने सुग्रीव के पास गुप्तचर भेज कर, उन्हें लालच देकर राम से विश्वासघात के लिये उकसाया, जहाँ सुग्रीव के अग्रज बाली से अपने सम्बन्धों का हवाला भी दिया था। उसने साम, दाम, दण्ड व भेद चारों तरह से सुग्रीवजी को श्रीराम से अलग करना चाहा। उस समय सुग्रीव की श्रीराम के प्रति निष्ठा देखने योग्य है।

३. रावण के अनुज विभीषणजी – विभीषण रावण की लात खाकर प्रभु राम की शरण में आये थे। प्रभु राम ने उन्हें मित्र कहकर लंका का राजा बनाया। रावण को मारकर श्रीराम ने अपना वचन पूरा किया। विभीषणजी श्रीराम को कितना चाहते हैं। उदाहरण से देखिये – राम-रावण युद्ध के दौरान रावण ने विभीषण को घर का भेदी समझ कर उन्हें मारने के लिए शक्ति-प्रहार किया। दहकती हुई शक्ति विभीषण के प्राण लेने के लिए उनकी ओर तेजी से लपकी। परन्तु भगवान राम ने मित्र की रक्षा के लिए वह प्रहार अपने सीने पर सह लिया, विभीषण को पीछे कर दिया तथा प्रभु राम भी शक्ति-प्रहार से एक क्षण के लिए मूर्छित सदृश हो गये। इस घटना से विभीषण के अन्दर जो परिवर्तन हुआ, वह देखिए। विभीषण गदा लेकर रावण के सम्मुख जा उससे भिड़ गये तथा एक बार तो गदा के प्रहार से रावण को विकल कर दिया। जो विभीषण रावण के सामने मुँह खोलने में हिचकिचाते थे, वही काल के समान रावण से भिड़ रहे हैं। यही प्रभु श्रीराम की विशेषता है कि वे अपने मित्रों को अपने समान होने को प्रेरित करते हैं। इसीलिए श्रीराम स्वयं आदर्श हैं, उनकी मित्रता आदर्श एवं उनके मित्र आदर्श हैं। शास्त्रों में मित्रों के ये लक्षण बताये गये हैं –

पापान्निवारयति योजयते हिताय,
गुह्यं निगूहति गुणान् प्रकटीकरोति।
आपद्गतं न जहाति ददाति काले,
सन्मित्रलक्षणमिदं प्रवदन्ति सन्तः।।

अर्थात् मित्र अपने मित्र को पाप से बचाता है। गोपनीय बातों को छिपाता है तथा गुणों को प्रकट करता है। आपत्ति के समय साथ नहीं छोड़ता, समय पड़ने पर साथ देता है। यही सच्चे मित्र के लक्षण हैं, ऐसा सन्त कहते हैं। ऐसे मित्रों के मित्र प्रभु श्रीराम व उनके तीनों मित्रों को शत-शत नमन। ○○○

दूसरों का हित पहले सोचो

स्वामी सत्यरूपानन्द

पूर्व सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर

हमें किसी का भी अकल्याण का चिन्तन नहीं करना चाहिये। दूसरे के कष्ट को देखकर सुखी होना, भगवान की अवहेलना करनी है। अगर हमारे मन में बदले की भावना होगी, तो हमारे मन में अशुभ चिन्तन होगा। हमें इन सब दोषों का मन से त्याग करना है। इस संसार में अपना कुछ नहीं है, सब भगवान का है – मेरा मुझमें कुछ नहीं, जो कुछ है सो तोर। जो कुछ हमारे पास है, उसे भगवान ने ही हमें दिया है। भगवान ने हमें अधिक दिया है, तो उसका वितरण करो। नहीं, तो मृत्यु के एक ही झटके से सब कुछ छूट जायेगा। इसे सदा याद रखो।

मनुष्य का मन संतुलित होना चाहिए। यदि अपने मन पर नियन्त्रण नहीं रखेंगे, तो देह मनुष्य का रहेगा, लेकिन आचरण पशुओं जैसा हो जायेगा। हमारे जीवन में नियन्त्रण, संयम होना चाहिए। भगवान ने हमें बुद्धि-विवेक दिया है, उससे अच्छे-बुरे का विचार करो। जीवन में सुविधा मिली है, तो हम क्या करें? ईश्वर ने हमें सुविधाओं का उपयोग करने के लिए स्वाधीनता दी है। उसके साथ मनुष्य को विवेक भी दिया है। मनुष्य के जीवन में विकास उसके विवेक से होता है। वह स्वयं अपना विकास कर सकता है। विवेक ही मनुष्य के उन्नत जीवन का आधार है। विवेक जाग्रत होता है, तो उसका एक लक्षण है। वह अच्छे-बुरे का विचार कर अच्छा ही सोचता है, अच्छा ही करता है। सुविधाओं में संस्कार का बहुत महत्त्व है। अच्छा होना माने संतुलित होना। जो संतुलित व्यक्ति है, वह अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होता जाता है, जीवन में उन्नति करने लगता है। मनुष्य में यह शक्ति है कि वह अपने आप में सुधार कर सकता है। मनुष्य शेर के समान भी हो सकता है और गाय भी हो सकता है।

ईश्वर की योजना में मनुष्य बहुत सुन्दर और श्रेष्ठ है। सब सुविधा होने के बाद भी मनुष्य में विकृति आती है। जब विवेक जागता है, तब उसकी रक्षा करता है। संयमित भोजन होना चाहिये। मात्रा में खाने से कोई दोष नहीं, लेकिन उसके गुलाम नहीं होना चाहिए। इन्द्रियों को मिलनेवाले सुख से अधिक सुख मन का है।

जब विवेक जाग्रत रहता है, तब मनुष्य भगवान को भोग लगाकर बच्चों को बाँटकर खाता है। लेकिन लोभी व्यक्ति पहले स्वयं ही खा लेता है। वह पहले अपना विचार करेगा, बाद में दूसरों का। इन छोटी बातों में हमारी पहचान होती है। जिसका विवेका जाग्रत होता है, वह अपनी सुविधाओं को भी दूसरे को देना चाहता है। आध्यात्मिकता यही है। स्वामीजी कहते हैं, 'वही जीते हैं, जो दूसरों के लिए जीते हैं, बाकी लोग तो जीवित की अपेक्षा मृत ही हैं।' मन अच्छा रहने से सब कुछ अच्छा हो जाता है। हृदय के विस्तार से मनुष्य का उद्धार सम्भव है। मनुष्य का विकास तब होता है, जब उसे लगने लगे कि मुझे जो सुविधा मिली है, वह सबको मिलनी चाहिए। दूसरों का हित सोचने से मनुष्य का विकास होता है। परिवार में जब वह दूसरों की सोचता है, तब उसका परिवार स्वर्ग बन जाता है। हमारा पहला कर्तव्य होता है कि हम अपनी सम्पदाओं से दूसरों की सहायता तो करें, किन्तु दूसरों से किसी भी प्रकार के प्रत्युपकार की इच्छा न रखें। नि:स्वार्थी भाव से परिवार और दूसरों के सुख में अपना सुख मानना चाहिए। दूसरे की सुविधाओं का पहले चिन्तन करने से शान्ति मिलती है। यदि शान्ति चाहिये, तो अपने मन पर भी ध्यान रखो। जब हम मन पर ध्यान रखेंगे, तब मन इधर-उधर भागना बन्द कर देगा और शान्त होने लगेगा। ○○○

तुम्हें दूसरों के दोषों को नहीं देखना चाहिए। अपने मन, वाणी और शरीर का नियन्त्रण करो और कभी भी विचलित मत होओ। प्रतिदिन अपने शरीर और मन को पवित्र करके भक्तिपूर्वक अपने गुरु की सेवा करो। किसी भी दिन सत्कर्म करने में आलस्य मत करो।

– श्रीरामचन्द्र

हनुमानजी से सीखें

श्रीमती मिताली सिंह, बिलासपुर

बच्चो, हम सब हनुमानजी को तो जानते ही हैं। जिन्हें हम संकट के समय याद करते हैं और वे हमारा संकट हर लेते हैं, इसलिए उनका एक नाम संकट-मोचन भी है। हनुमानजी रामजी के बहुत बड़े भक्त हैं। उन्हीं के आशीर्वाद से वे आज भी पृथ्वी पर विद्यमान हैं। इसलिए हम जब भी सच्चे मन से उन्हें स्मरण करते हैं, तो वे हमारी सहायता करने अवश्य आते हैं।

केसरीनंदन पुत्र हनुमान ने खेल-खेल में सूर्यदेव को निगल लिया। सृष्टि में अंधेरा छा गया, क्रोधित होकर इन्द्र देव ने अपने वज्र से उनकी ठोड़ी पर प्रहार किया। ठोड़ी टूट गई। संस्कृत में ठोड़ी को हनु कहते हैं, तभी उनका नाम हनुमान पड़ा। आओ बच्चो, आज हम हनुमानजी से पाँच बड़ी बातें सीखते हैं।

१. बल और बुद्धि में संतुलन बनाये रखना आवश्यक है – बचपन में मिले श्राप के कारण हनुमानजी को अपनी शक्तियाँ स्मरण नहीं थीं। जामवंत ने उन्हें स्मरण दिलाया कि तुम समुद्र पार कर सकते हो। समुद्र में सुरसा नामक राक्षसी ने हनुमानजी को खाने के लिए अपना विशाल मुँह १ योजन का खोला, तो हनुमानजी २ योजन के हो गये। सुरसा जितना अपना मुँह फैलाती, हनुमानजी उसके दोगुने हो जाते। जब सुरसा ने १०० योजन का मुँह खोला, तो हनुमानजी तीव्र गति से छोटे हो गये और सुरसा के मुँह के अन्दर प्रवेश कर बाहर निकल गये। जैसे ही हनुमानजी ने ऐसा किया, सुरसा प्रसन्न हो गई और अपने वास्तविक स्वरूप में आकर कहा, ''मैं सर्पों की माता हूँ, देवताओं ने मुझे तुम्हारी परीक्षा लेने को भेजा है कि जो सीता-माता की खोज में जा रहा है, उसमें कितना साहस, धैर्य और बल है। तुम इस परीक्षा में उत्तीर्ण हो गये।'' तो बच्चो, अपने जीवन में बल और बुद्धि में समानता बनाये रखना अति आवश्यक है। यह मालूम होना चाहिए कहाँ बड़ा बनना है और कहाँ छोटा बनना है।

२. प्रबंधन – हनुमानजी ने लंका-विजय को आसान बनाने का कार्य किया था। उन्होंने राक्षसों की नगरी में रामभक्त विभीषणजी को पहचाना। लंका में माता-सीता कहाँ हैं, पता लगाया। माता-सीता का दर्शन करके उनका सन्देश लाया। लंका में भय फैलाने के लिये वहाँ आग लगा दी और यह

सन्देश दिया कि हमारी सेना कितनी विशाल है। विभीषण की मित्रता श्रीराम से करा दी, जिससे लंका-विजय आसान हुआ। जब जीवन में कोई बड़ा लक्ष्य आ जाये, तो छोटे-छोटे कदमों से उसे आसान कर सकते हैं। अपने प्रबंधन से यह सीखाते हैं हनुमानजी।

३. जीवन में कभी अहंकार मत करना – जब हनुमानजी लंका से सीताजी का समाचार लेकर आये, तो जामवंतजी श्रीराम के सामने हनुमानजी का गुणगान करने लगे। श्रीराम ने हनुमानजी से पूछा – क्या तुमने इतना सब किया, लंका में आग लगाकर सबको भयभीत कर दिया! तब हनुमानजी ने कहा, 'नहीं, मैंने नहीं किया।' रामजी ने कहा, तो मैंने किया है। तब हनुमानजी ने कहा, हाँ प्रभु आपके आशीर्वाद से यह सम्भव हो सका। मैं तो निमित्तमात्र था, कराने वाले तो आप ही हैं। हमेशा विनम्र बनकर रहें क्योंकि विनम्रता महान लोगों की पहचान होती है। हनुमानजी में अहंकार कभी नहीं आया वे सदैव विनम्र भक्त बने रहे।

४. भावना को अपने वश में रखना – हनुमानजी लंका से माँ सीता को छुड़ाकर वापस ले आते लेकिन उन्होंने ऐसा नहीं किया। माता सीता ने हनुमानजी से पूछा, प्रभु श्रीराम को क्रोध नहीं आ रहा, वे मुझे यहाँ से लेकर क्यों नहीं जाते। हनुमानजी ने कहा, मैं अभी आपको यहाँ से ले जा सकता हूँ, पर आदेश नहीं हूँ। आप थोड़ी प्रतीक्षा कीजिए। प्रभु श्रीराम आयेंगे, रावण का वध करेंगे और आपको ससम्मान ले जायेंगे। मैं रावण की तरह आपको चुरा करके यहाँ से नहीं ले जा सकता। बच्चो, भावना में बहकर हमें अनुचित कार्य नहीं करना चाहिए।

५. बड़ों के सामने सदैव 'हाँ' बोलना सीखें – जब हनुमानजी से कहा गया – लंका जाओगे। कहा, हाँ जाऊँगा। उसी प्रकार युद्ध में जब लक्ष्मणजी मूर्छित हो गये, तब संजीवनी बूटी हिमालय से लाना था। श्रीरामजी ने कहा, हनुमान जाओगे। उन्होंने कहा 'हाँ' जाऊँगा। विद्युत-गति से गये और संजीवना बूटी की पहचान न होने पर पूरा पहाड़ उठाकर ले आये। पूरा पहाड़ लेकर आ गये, लेकिन 'ना' नहीं कहा। अगर आप भी जीवन में कुछ बड़ा करना चाहते हैं, तो अपने बड़ों की बातों में 'हाँ' कहना सीखें। ○○○

श्रीरामचन्द्र जयन्ती विशेष

हिन्दी साहित्याकाश में प्रखर सूर्य श्रीराम

उत्कर्ष चौबे, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

श्रीरामचरितमानस में गोस्वामीजी ने कहा है – '**नानापुराणनिगमागम सम्मतं यद् रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि**', जो इस बात का द्योतक है कि रामकथा वास्तव में सार्वत्रिक है, इसका विस्तार पुराणों और निगमागमों तक ही नहीं, बल्कि 'क्वचिदन्यतोऽपि' है।

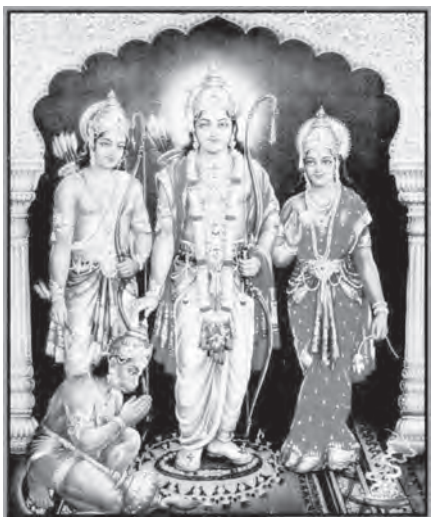

रामकथा साहित्य की एक सुदीर्घ परम्परा रही है, बहुविध और बहुविधाओं में इस कथा का विस्तार देखा जाता है। यह परम्परा संस्कृत साहित्य से प्रारम्भ होकर आदिकालीन पालि, प्राकृत, अपभ्रंश साहित्य मध्यकालीन अवधी और ब्रजभाषा आदि के साहित्य तथा आधुनिक काल में खड़ी बोली साहित्य तक चलती रही है। वह भी पर्याप्त अन्तर के साथ। यह अन्तर कथा का अन्तर नहीं, युग का अन्तर है। उन जीवन-स्थितियों का अन्तर है, जिनके परिप्रेक्ष्य में यह कथा लिखी गई। युगबोध से जोड़कर देखें, तो कह सकते हैं कि आवश्यकतानुसार हर बार एक नई रामकथा रचने का काम भी साहित्य ने किया है। क्योंकि मानव की सर्वमंगल-कामना जिसमें निहित हो, वही साहित्य है – '**हितेन सह सहितम् सहितस्य भावः साहित्यम्**'। बिल्कुल वैसी कथा जैसी युग ने चाही, कहीं भक्ति एवं ज्ञान के आदर्श के रूप में, तो कहीं जीवन के सन्दर्भों से जोड़ते हुए राम के संघर्षों, अन्तर्द्वंद्वों को व्यक्ति के संघर्षों-अन्तर्द्वंद्वों से जोड़कर। एक तरह से देखा जाये, तो रामकथा को जन-जन की कथा बनाने का दायित्व भी साहित्य ने निभाया है।

कथा के इस भेद को हम राम-काव्य परम्परा के अगणित मोतियों के रूप में समझ सकते हैं, जिसका क्रम कहीं से भी टूटा नहीं है। यही एकसूत्रता प्रत्यक्षतः भारतीय एकसूत्रता का प्रमाण है और यह भी कि जितनी विभिन्नता एवं विविधता (भाषा, शिल्प एवं प्रबन्ध की दृष्टि से) रामकथा साहित्य में पाई जाती है, उतनी शायद ही किसी कथा साहित्य में मिले। तुलसी ने भी 'रामकथा के मिति जग नाही' और 'राम अनन्त अनन्त गुन, कथा अमित विस्तार' कहकर रामकथा की इसी अपरिमितता को चिह्नित किया है।

ज्ञान और परम्परा का मूल स्रोत वेदों को ही माना जाता है। भगवान श्रीराम और उनकी कथा का वर्णन वेदों में भी पर्याप्त मिलता है। तभी तो रामजन्मभूमि के सम्बन्ध में जब मुस्लिम जज की कुटिल मति ने पाश्चात्य विद्वानों से प्रभावित हो वेदों में भगवान श्रीराम के अस्तित्व पर प्रश्न उठाया, तब प्रखर भारतीय प्रज्ञा का परिचय देते हुए तुलसी पीठाधीश्वर जगत गुरु रामभद्राचार्य जी ने वेदों में भगवान श्रीराम की वर्णना ही नहीं, अपितु अथर्ववेद से जन्मस्थान तक प्रस्तुत कर निर्णय अपने धर्म के पक्ष में कर दिया। उदाहरण –

अष्टचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या।
तस्यां हिरण्यः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः।।

(अथर्ववेद १०.२.३१)

अर्थात् ''आठ चक्रों और नौ द्वारोंवाली अयोध्याजी दिव्य गुणों से युक्त, भक्ति-सम्पन्न परम-भागवत स्वरूप देवों की पुरी है, (जो देवों द्वारा सेवित है), उस अमृत से परिपूर्ण ब्रह्म की अयोध्या पुरी में दिव्य-ज्योतियों से आवृत सुवर्णमय स्वर्ग-कोश है अर्थात् परम सुन्दर आनन्दमय दिव्य-महामण्डप है।'' यही भारतीय विश्वास एवं मान्यता भी है। चारों वेदों और उपवेदों में भगवान राम का उल्लेख शताधिक बार हुआ है।

रामकथा को पूर्णतः निश्चित एवं व्यवस्थित रूप आदिकवि वाल्मीकि द्वारा रचित रामायण ने दिया है। इसी को आधार बनाकर कालान्तर में विशाल राम साहित्य का सृजन हुआ। परवर्ती समस्त कविगण आदिकाव्य को आदर्श एवं स्वयं को आदिकवि का ऋणी मानकर उनके योगदान को शिरसा स्वीकार करते हैं। यथा संस्कृत के त्रिविक्रम भट्ट –

सदूषणापि निर्दोषा, सखरापि सुकोमला।
नमस्तस्मै कृता येन रम्या रामायणी कथा।।

अवधी में गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरितमानस में इसी प्रकार आदि कवि का ऋण स्वीकार करते हुए उनकी वन्दना की है –

बंदौ मुनिपदपकंज, रामायन जेहि निरमयउ।
सखर सुकोमल मंजु, दोसरहित दूषणसहित।
१/१४/घ

किन्तु श्रीरामकथा केवल वाल्मीकि रामायण तक सीमित नहीं रही, बल्कि मुनि व्यास द्वारा रचित महाभारत के चार स्थलों – रामोपाख्यान, आरण्यकपर्व, द्रोणपर्व तथा शान्तिपर्व तक में वर्णित है। इसके अलावा संस्कृत में ही कई और रामायण तथा नाटक, चम्पू, काव्यादियों में भी रामकथा प्राप्त होती है। बौद्ध परम्परा में भी श्रीराम सम्बन्धित दशरथ जातक, अनामक जातक तथा दशरथ-कथानक नामक तीन ग्रन्थ मिलते हैं। रामायण से थोड़ा भिन्न होते हुए भी वे साहित्येतिहास के स्वर्णिम पृष्ठ हैं। जैन साहित्य में भी रामकथा सम्बन्धित कई ग्रन्थ मिलते हैं, जिनमें विमलसूरिकृत पद्मचरित (प्राकृत), स्वयंभू कृत पउमचरिउ (अपभ्रंश), विषेणाचार्यकृत पद्मपुराण (संस्कृत) तथा संस्कृत में ही कवि गुणभद्र द्वारा रचित उत्तर पुराण हैं। इसी क्रम में महाकवि कालिदास, भास, भट्ट, प्रवर सेन, क्षेमेन्द्र, भवभूति, राजशेखर, कुमारदास, विश्वनाथ, सोमदेव गुणदत्ता, नारद, व्योमेश से लेकर हिन्दी के मैथिलीशरण गुप्त, केशवदास, गुरुगोविन्द सिंह, समर्थ गुरु रामदास, संत तुकडोजी महाराज आदि चार सौ से अधिक कवियों व संतों ने अलग-अलग भाषाओं में राम तथा रामायण के बारे में काव्यों-कविताओं की रचना की है।

तुलसीदास ने 'श्रीरामचरित-मानस' की रचना कर रामकथा को जन-जन तक पहुँचा दिया एवं यह रचना हिन्दी साहित्य में अब तक की रामकथा सम्बन्धी सबसे प्रसिद्ध एवं लोकप्रिय रचना सिद्ध हुई है। उन्होंने जितनी भी रचनाएँ की हैं, सभी में उनके आराध्य भगवान श्रीराम के चरित एवं कथा का ही वर्णन किया गया है। तुलसी पूर्व हिन्दी रामकथा साहित्य अधिक विस्तृत नहीं है तथा तुलसीदासोत्तर हिन्दी रामकथा साहित्य श्रीरामचरित-मानस की जूठन ही लगती है। तभी तो अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' की लेखनी यह कहने पर विवश हो जाती है –

बन राम रसायन की रसिका,
रसना लसिकौं की हुई सफला।
वन पावन भाव की भूमि भली,
हुआ भावुक भावुकता का भला।
अवगाहन मानस में करके,
जनमानस का मल सारा टला।
कविता करके तुलसी न लसे,
कविता लसी पा तुलसी की कला।

मानस के अलावा गोस्वामीजी ने दोहावली, कवित्त रामायण (कवितावली), गीतावली, रामाज्ञाप्रश्न, विनयपत्रिका, रामललानहछू, जानकीमंगल, बरवै रामायण, वैराग्य संदीपिनी जैसी महत्त्वपूर्ण रचनाओं के माध्यम से रामकथा की अमृत गंगा को आगे बढ़ाते हुए अपनी भक्ति रूपी लेखनी से इसका आस्वादन किया। तुलसी राम के सगुण भक्त थे, लेकिन उनकी भक्ति में लोकोन्मुखता थी। वे राम के अनन्य भक्त थे। राम ही उनकी कविता के विषय हैं। विभिन्न काव्य–रूपों में उन्होंने राम का ही गुणगान किया है, किन्तु राम परम ब्रह्म होते हुए भी मनुज हैं और अपने देशकाल के आदर्शों से निर्मित हैं। तुलसी के राम ब्रह्म भी हैं और मानव भी। तुलसीदासजी ने एक ओर तो तत्कालीन परिस्थितियों का विशद निरूपण किया, तो दूसरी ओर रामराज्य की परिकल्पना करते हुए आदर्श शासन व्यवस्था का प्रारूप प्रस्तुत किया। वे कहते हैं –

दैहिक दैबिक भौतिक तापा।
राम राज काहू नहिं ब्यापा।।
सब नर करहीं परस्पर प्रीती।
चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती।। ७/२०/१

वस्तुतः रामोन्मुखता तुलसी का सबसे बड़ा आदर्श है। राम से विमुख होकर सभी सम्बन्ध त्याज्य हैं – ''**तजिए ताहि कोटि बैरी सम जदपि परम सनेही।**'' तुलसी की रचनाओं से जहाँ एक ओर रामभक्ति शाखा की अभूतपूर्व श्रीवृद्धि हुई, वहीं दूसरी ओर यह भी हुआ कि रामभक्ति शाखा के साहित्य में होनेवाले परवर्ती कवि उनके आगे धूमिल पड़ गए। इस प्रकार तुलसी-परवर्ती सगुण राम-भक्त कवियों का साहित्यैतिहासिक महत्त्व अधिक है, साहित्यिक महत्त्व अपेक्षाकृत कम।

आदिकालीन रामकथा

तुलसी पूर्व आदिकालीन काव्यों का अवलोकन करने पर महाकवि चन्दवरदाई कृत 'पृथ्वीराज रासो' राम-काव्य परम्परा की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण कृति है। इस ग्रन्थ के द्वितीय समर्थ के प्रारम्भ में दशावतार वर्णन के अन्तर्गत २६४ से ३०१ छन्द तक रामावतार का विशिष्ट वर्णन है। यह कृति हिन्दी की रामकथा सम्बन्धी प्रथम रचना मानी जाती है। यह कृति हिन्दी रामकाव्य के क्षेत्र में उनकी नवीन मौलिकता है। भगवान राम के चरित्रगान की प्रेरणा उन्हें उनकी भक्तिमती स्त्री से प्राप्त होती है। जब चन्द की स्त्री ने उनको भगवान के यशोवर्णन की प्रेरणा दी, तब उन्होंने अपनी विवशता बताई कि वे तो दिल्लीपति पृथ्वीराज के चरित्र वर्णन के लिए प्रतिज्ञा कर चुके हैं। स्त्री ने कहा –

चित्रन हारे च्यंति मन, रे चतुरंगी नाह।
का चहुवान सुकिति कवि, मनु मनुच्छि हरि काह।।

पत्नी के समझाने का महाकवि चन्द के मन पर प्रभाव पड़ा। उन्होंने कहा कि यदि तुम मुझसे हरिरस का तत्त्व पूछना चाहती हो, तो उस रसवार्ता का ही पहले श्रवण करो। महाकवि ने आरम्भ में लिखा –

किं सम्मान स-सेव देव रजयं दुष्टान उच्छासयं।
किं सुवखानि दुःखानि सेवन फलं आयास भूमिसय।।
किरनं छितया छितं कु कमलं वन्दे सदा विप्पय।

भगवान राम द्वारा आयोजित लंका युद्ध में श्रीहनुमान के नेतृत्व के प्रभावशाली वर्णन के साथ ही अपने ग्रन्थ पृथ्वीराज रासो में रावण वध और राम की कथा का वर्णन चन्द्र ने किया है।

तुलसी पूर्व रामकथाकारों में ईश्वरदास का प्रमुख स्थान है, जिन्होंने भरत-मिलाप नामक पद्यमय ग्रन्थ अवधी भाषा में लिखा है। राम से मिलने के लिए व्याकुल होकर उनके पास गये भरत के इसी करुण-कोमल प्रसंग को इस काव्यकृति में दोहा-चौपाई में लिपिबद्ध किया गया है। ईश्वरदास ने अंगदपैज का वर्णन परम्परागत रामायणों के आधार पर ही किया है। यह रावण और अंगद की नोक-झोंक से सम्बन्धित है और इसमें अंगद की ओजस्विता का सजीव चित्रण है। कवि ने अंगदपैज संवाद को नाटकीय शैली में चित्रित किया है। ईश्वरदास की एक और कृति रामजन्म भी है।

अग्रदास की रचना अष्टयाम रसिक सम्प्रदाय का आदि ग्रन्थ है, जो संस्कृतनिष्ठ शैली में लिखा गया हैं। इस ग्रन्थ में सीता-राम की आठ प्रहरों में की गयी सेवा का वर्णन है, जिसमें मंगल आरती से लेकर शयन काल तक की सेवा का वर्णन है। इसमें राम के सखा और सखियों का उल्लेख है। राम के इन साखाओं में रामकथा में प्रसिद्ध लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, जाम्बवन्त, हनुमान नहीं हैं, बल्कि आठ सखा, आठ सखियाँ और आठ दासियों के नाम इस प्रकार गिनाये गये हैं। सखाओं के नाम सुलोचनामणि, सुभद्रामणि, सुचन्दमणि, जयसेनमणि, बलिष्ठमणि, सुभशीलामणि, अनंगमणि तथा रसकेन्दु हैं। अष्टयाम में वर्णित सखा और सखियों के नाम से इस बात की भी पुष्टि होती है कि रामायण आदि में प्रसिद्ध राम साहित्य में रसिक सम्प्रदाय सर्वथा भिन्न है।

तुलसीदास से पूर्व के रामभक्त कवियों में विष्णुदास का नाम सर्वोपरि है। नागरी प्रचारिणी सभा की विभिन्न खोज रिपोर्टों में इनके द्वारा रचित पाँच ग्रन्थ बताए जाते हैं। सर्वप्रथम वाल्मीकि रामायण का हिन्दी अनुवाद करने का श्रेय विष्णुदास को माना जाता है। इन्होंने अपने हिन्दी अनुवाद रामायण कथा को विवरणात्मक रूप में प्रस्तुत किया है।

कृष्ण-भक्ति शाखा के सर्वश्रेष्ठ कवि भक्त सूरदास ने अपने ग्रन्थ सूरसागर के नौवें स्कन्ध में रामकथा का वर्णन किया है। सूरदास ने राम-सम्बन्धी पद वल्लभ सम्प्रदाय के उत्सवों में विधि-निर्वाह के निमित्त रचे थे। राम के प्रति उनका प्रगाढ़ भाव नहीं था। नवम स्कन्ध में अतिरिक्त प्रथम स्कन्ध में विनय के अन्तर्गत भी रामविषयक पदों की रचना की है, जिसके सम्बन्ध में मान्यता है कि ये पद वल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षित होने के पूर्व लिखे गये। सूरसागर में रामायण प्रसंग शीर्षक में लगभग डेढ़ सौ पद संग्रहित हैं। सूरदास ने रामकथा के समस्त प्रसंगों को न चुनकर अपनी रुचि के अनुसार कुछ कथाओं का ही चयन किया है। सूरसागर के अतिरिक्त सूरदास ने सूरसारावली में छन्द संख्या १४० से ३१६ तक के छन्दों में वाल्मीकि रामायण के आधार पर राम का जीवन-चरित वर्णित किया है।

भक्तिकाल में रामकाव्य परम्परा के शिखर कवि तुलसीदास ने रामकथा को जिस चरमोत्कर्ष पर पहुँचा दिया था, उसके बाद अन्य कवि उस शिखर तक नहीं पहुँच पाये। इसका परिणाम यह हुआ कि रामकथा की दो धारा हो गयी। प्रथम धारा में तुलसीदास हैं, जो मर्यादा को स्थापित करते

हैं। श्रीराम को मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में प्रतिष्ठित करते हैं। दूसरी धारा श्रीकृष्ण की माधुर्य भक्ति से प्रभावित होकर राम-सीता की लीलाओं को लेकर आगे बढ़ी, जो बाद में रीतिकाल में रामकथा सम्बन्धी रचनाओं का प्रमुख विषय रहा। इसका आधार राधा का कृष्ण की माधुर्य भावना रही है। यही कारण है कि तुलसीदासोत्तर रामकथा की परम्परा में रामकाव्य के दो रूप प्राप्त होते हैं। प्रथम मर्यादा भक्ति परम्परा का रामकाव्य और दूसरा रसिक भक्ति परम्परा का रामकाव्य। मर्यादा राम भक्ति परम्परा में महाकवि तुलसीदास का स्थान सर्वोपरि है।

रीतिकालीन रामकथा

आचार्य केशव तुलसीदास के समकालीन कवि थे, जो हिन्दी काव्यशास्त्र के प्रथम आचार्य माने जाते हैं। आचार्य केशव द्वारा रचित रामचन्द्रिका का राम-काव्य-परम्परा में रामचरितमानस के बाद द्वितीय स्थान है। इस रचना का उद्देश्य रामचरितमानस की तरह राम का यशोगान करना ही है, लेकिन केशव राम के ब्रह्मत्व और भक्ति भावना को तुलसी की भाँति महत्त्व नहीं दे सके। केशव के पास तुलसी की भाँति नाना-पुराण-निगमागम-सम्मत दृष्टि नहीं थी। उनका केवल एक उद्देश्य था, अपनी प्रतिभा का पाण्डित्य-प्रदर्शन करना। उन्होंने रामचन्द्रिका के माध्यम से यह कार्य किया। उस समय जनता रामकृपा की रसिक बन चुकी थी, इससे उनका कार्य सरल हो गया। पाण्डित्य प्रदर्शन से पदों का भाव विकृत हो गया है। जैसे राम की वियोग दशा का वर्णन करते हुए इस वाक्य को देखिए – ''**बासर की सम्पति उलूक ज्यों न चितवत।**'' केशव को कवि-हृदय नहीं मिला था, उनमें वह सहृदयता और भावकुता न थी, जो एक कवि में होनी चाहिए। किन्तु कुछ संवादों में केशव की अद्‌भुत पाण्डित्यपूर्ण रूप से श्रीराम द्वारा उपदेश किया गया है। उदाहरणार्थ, भगवान लक्ष्मण से वन जाते समय कहते हैं –

धाम रहो तुम लक्ष्मण राज की सेवा करौ।
मातन के सुनि तात ! सुदीग्ध दुख हरौ।।
आय भरत्थ कहाँ धैं करैं जिय भाय गुनौ।
जो दुख देयँ तो लैं उरगाँ यह सीख सुनो।।

रीतिकालीन प्रसिद्ध कवि सेनापति द्वारा रचित कवित्त रत्नाकर रामकाव्य-परम्परा की रचनाओं में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। इसमें पाँच तरंग और तीन सौ चौरानवे छन्द हैं। इस ग्रन्थ में कवि ने श्लेष अलंकार, शृंगार, ऋतु वर्णन, रामायण और रसायन का मधुर प्रसंगों के साथ सारगर्भित भाषा में वर्णन किया गया है। रामायण महानाटक प्राणचन्द चौहान द्वारा रचित एक प्रबन्ध काव्य है। इसमें दोहा चौपाई का प्रयोग हुआ है। इस पर हनुमन्नाटक का प्रयोग परिलक्षित होता है। रामायण महानाटक संवादात्मक प्रबन्धकाव्य है, जो वर्णनात्मक शैली में रचित है। माधव चरण दास ने रामकथा सम्बन्धी दो रचनाओं को रचा है – रामरासो और अध्यात्म रामायण (संस्कृत अध्यात्म रामायण से भिन्न)। रामरासो में राम के जीवन से सम्बन्धित प्रमुख घटनाओं का ही उल्लेख किया है और उसका विस्तार से वर्णन किया है। इनके अध्यात्म रामायण पर संस्कृत की आध्यात्मिकता का प्रभाव प्रमुख रूप से परिलक्षित होता है। हृदयराम की रामकथा सम्बन्धी हनुमन्नाटक की रचना हिन्दी रामकथा परम्परा की एक प्रसिद्ध रचना है। कहा जाता है कि इस रचना को लिखने की प्रेरणा इन्हें स्वप्न में हनुमानजी ने दी थी। इसलिए इस कृति का नाम हनुमन्नाटक रखा। इस पर संस्कृत रचना हनुमन्नाटक का स्पष्ट प्रभाव दिखाई पड़ता है। इसमें सीता स्वयंवर से लेकर राज्याभिषेक तक की कथा सवैया छन्द एवं संवाद शैली में बड़े रोचक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। रामकाव्य परम्परा को समृद्ध करनेवाली कृति पौरुषेय रामायण है, जिसकी रचना नरहरि बारहट ने किया। लाल दास कृत अवधविलास में काण्ड के स्थान पर विश्राम अभिधान किया गया है। इसमें रामकथा राम-जन्म से लेकर वन-गमन तक का ही वर्णन है। प्रसंगानुकूल अनेक स्थानों पर भक्ति के अनेक रूपों और ध्यान योग क्रियाओं का वर्णन हुआ है। कपूरचन्द्र त्रिखा ने गुरुमुखी लिपि में रामायण की रचना की है, जिसमें १४५ छन्द हैं।

निर्गुण धारा के कवि संत लाला दास लालापंथ के प्रवर्तक हैं। इनकी रचना लालादास की चेतवाणी में भी रामकथा सम्बन्धी रचना संकलित है। अपने ग्रन्थों में ये इस राम कथा को सर्वश्रेष्ठ रचना मानते हैं और राम को सर्वश्रेष्ठ पुरुष।

मलूक दास का जन्म उस समय हुआ, जब भारतवर्ष में अकबर का शासन था। इनके द्वारा रचित कई ग्रन्थ बताये जाते हैं, जिनमें रामकथा सम्बन्धी रामावतार लीला है। इसमें राम के अवतार और उनके चरित्र को कवि ने बहुत रोचक ढंग से प्रस्तुत किया है। ये निर्गुण धारा के अन्तर्गत संत

कवियों में प्रमुख स्थान रखते हैं, लेकिन बाद में इनका झुकाव सगुण उपासना की ओर आकृष्ट हुआ।

गुरु गोविन्द सिंह ने रामकथा सम्बन्धी ग्रन्थ रामावतार और गोविन्द रामायण की रचना की। कहा जाता है कि तुलसी के बाद जितने रामकथाकार हुए उन पर मानस का प्रभाव दिखाई पड़ता है, लेकिन गुरु गोविन्द सिंह पर मानस का कोई प्रभाव नहीं है। श्रीरामचरितमानस और रामावतार की तुलना करने पर स्पष्ट होता है कि मानस का उद्देश्य अन्त:करण के सुख के लिए किया गया है। लेकिन रामावतार में राम को राष्ट्रनायक के रूप में स्थापित किया गया है। तुलसी के राम मर्यादावादी राम हैं। गुरुगोविन्द सिंह के राम विष्णु के अवतार हैं, लेकिन पुरुषोत्तम राम की भाँति मर्यादावादी नहीं हैं –

मास त्रयोदसी चढ्यो, तब संतन हेतु उधार।
रावण रिपु परगट भये, गज आन राम अवतार।।

रीतिकालीन रामकाव्य परम्परा के कवि जानकी रसिक शाखा अवधसागर नामक रामकाव्य की रचना ब्रजभाषा में किये हैं। अवधसागर अष्टयाम के आधार पर रची गयी है। इसमें राम के दैनिक जीवन, रास, नृत्य भोजन शयन आदि का वर्णन विस्तार से किया गया है। वस्तु-वर्णन शैली और श्रृंगारिकता प्रभावकारी है, उसमें उनको अभूतपूर्व सफलता मिली है। राम की शोभा का वर्णन इन पदों में द्रष्टव्य हैं –

रथ पर राजत रघुवर राम।
क्रीत मुकुट सिर धनुष बान कर शोभा कोटिन काम।।
स्यामगात केसरिया बानो सिर पर मोर ललाम।
बैजतीबनमाल लसै उर फटिक मध्य अभिराम।।
मुख मयंक सरसीरूह लोचन हैं सबके सुखधाम।
कुटिल अलक अतरन मैं भीनी दुहुं दिसि छटी स्याम।।
कम्बु कंठ मोतिन की माला किंकिन कटि दुति दाम।
रस माला यह रूप सिकवर करहु हिए अभिराम।।

जनकराजकिशोरी शरण बाबा राघवदास के शिष्य और अयोध्या के महन्त थे। इन्होंने रामकथा सम्बन्धी अनेक कृतियों की रचना की, जैसे – सीताराम सिद्धान्त, मुक्तावली, सीताराम रस तरंगिणी, जानकी करुणामरण, रघुवर करुणाभरण आदि उल्लेखनीय हैं। इनकी कृतियाँ रसिक सम्प्रदाय से प्रभावित हैं, जो रामकाव्य पर दिखायी पड़ता है। उदाहरणस्वरूप –

फूले कुसुम द्रुम विविध रंग सुगंध के चहुचाव।
गुंजत मधुप-मदमत्त नाना रंग रंज अंग फाव।।
सीरो सुगंध सुमंत वात विनोद कंत वहंत।
परसत अनंग उदोत हिय अभिलाख कामिनि कंत।।

रीतिकालीन रामकाव्य-धारा के कवि नवल सिंह ने रामकथा सम्बन्धी अनेक काव्यों की रचना की है, जो इस प्रकार हैं – रूपक रामायण, सीता स्वयंवर, रामविवाह खण्ड, नामरामायण, रामायण सुमिरनी, मिथिलाखण्ड, अध्यात्म रामायण, आलहा रामायण तथा सबसे प्रसिद्ध रामचन्द्र विलास है। इनकी भाषा अनुप्रास युक्त तथा अलंकारमयी है। यथा –

अभव अनादि अनन्त अपारा।
अमन अप्रान अमर अतिकारा।।
अग अनीह आत्मविनासी।
अगम अगोचर अविरल वासी।।

मध्य प्रदेश के रीवा निवासी रामकाव्य के सशक्त कवि विश्वनाथ सिंह की रचनाएँ हैं। जैसे – रामायण गीता, रघुनंदन प्रामाणिक, रामचन्द्र की सवारी, आनन्द रघुनन्दन (नाटक), आनन्द रामायण, संगीत रघुनन्दन आदि।

रीतिकालीन राम काव्य परम्परा में रामप्रिया शरण का नाम बहुत प्रसिद्ध है। ये मिथिला के महन्त थे। इनका समय १७०३ ई. माना जा सकता है। इनके पूर्व जितने भी रामकथाकार हुए हैं, उन सबने राम के चरित का गुणगान किया। लेकिन इन्होंने सीताजी के वृत्त का आधार बना सीतायन नामक काव्यग्रन्थ की रचना की, जिसमें सीता तथा उनकी सखियों के चरित्र का वर्णन विस्तार से किया गया है। इनकी भाषा ब्रजभाषा है। रोला छन्दों का प्रयोग इस ग्रन्थ में किया हैं। उदाहरणार्थ –

पितु दरसन अभिलाष जुगुल कुंवरन मन भाई।
गुरु मनमुख कर जोरि भांति बहु विनय सुनाई।।
पुलके गुरु लखि सील राम को अति सुख पाये।
ताहि समै सब सखा संग लक्ष्मी विधि आये।।

भगवंत राम खींची कृत हनुमत्पच्चीसी, नवलसिंह कृत रामचन्द्र विलास, रसिक अली कृत मिथिला बिहार, कृपानिवास की भावनापच्चीसी, मधुसूदन दास कृत रामाश्वमेध, जानकी शरण कृत सियाराम रस मंजरी, गोकुल नाथ कृत सीताराम गुणार्णव, मनियार सिंह रचित

हनुमत छब्बीसी, ललकदास कृत सत्योपाख्यान, काशी के रामकाव्यकार गणेश कृत वाल्मीकि रामायण – श्लोकार्थ प्रकाश व बख्शी हंसराज श्रीवास्तव कृत 'प्रेम सखी' में श्रीराम तथा सीताजी का शिख नख का वर्णन इस युग की रामकथा परम्परा की अन्य महत्त्वपूर्ण रचनायें हैं।

आधुनिक काल में रामकथा

आधुनिक काल में रामकथा सम्बन्धी अनेक रचनाओं को साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। रामकथा को मध्यकाल के कवियों ने राम को ईश्वर घोषित किया है। आधुनिक काल में उनको इहलौकिक और मनुष्यत्व की श्रेणी में लाकर खड़ा कर दिया है। आधुनिक काल के रामकथाकारों ने राम-काव्यों में युग, परिवेश, वातावरण के आधार पर पात्रों का चरित्र-चित्रण किया है। राम को ईश्वर की उपाधि में उतार कर मनुष्यता के धरातल पर रखा है, जिससे राम और रामकथा की प्रासंगिकता और भी अधिक बढ़ जाती है।

आधुनिक प्रवृत्तियों के जनक माने जानेवाले भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने रामकथा सम्बन्धी कई कृतियों का निर्माण किया है, जिनमें प्रमुख है दशरथ विलाप। इसके अतिरिक्त निबन्धों में राम के चरित्र का सहारा लिया है। उन्होंने 'जनकपुर यात्रा', 'सरयुपार की यात्रा', 'चित्रकूटस्थ राम', 'प्रशस्ति', 'राम-सीता संवाद' आदि निबन्ध प्रसिद्ध हैं और रामलीला शीर्षक एक आख्यायिका की रचना भी की है। भारतेन्दुजी ने दशरथ-विलाप में दशरथ का पुत्र-प्रेम और उनके विलाप को प्रस्तुत किया है –

कहाँ हो ऐ हमारे राम प्यारे।
किधर तुम छोड़कर मुझको सिधारे।।
बुढ़ापे में ये दुःख भी देखा था।
इसी के देखने को मैं बचा था।।

भारतेन्दु युग के प्रमुख कवि बदरी नारायण चौधरी 'प्रेमधन' ने ब्रज भाषा में रामकथा रचना प्रयाग रामागमन नामक एक मुक्तक काव्य की रचना की थी। लाला सीताराम भारतेन्दु युगीन ही कवि हैं, जिन्होंने संस्कृत के ग्रन्थ रघुवंश का पद्यानुवाद ब्रज भाषा में किया।

हिन्दी साहित्य के आधुनिक युग के प्रारम्भिक वर्षों में साहित्य नियमन के तीन अंग भाषा, व्याकरण, साहित्य शास्त्र की बागडोर द्विवेदी, गुरु और भानु के हाथों में रही। उनके द्वारा रचित नवपंचामृत रामायण रामकाव्य बहुत महत्त्वपूर्ण है। इसके अतिरिक्त इनके अन्य ग्रन्थ तुलसी तत्त्व प्रकाश, रामायण वर्णावली, श्री तुलसीभाव प्रकाश हैं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के फुफेरे भाई व कृष्णभक्त श्रीराधाकृष्ण दास ने रामकथा सम्बन्धित रचना रामचरित मानस नाम से ही की है। बालमुकुन्द गुप्त अपनी भाषा के लिए जाने जाते हैं। इन्होंने रामकथा सम्बन्धी रचना रामरक्षा स्तोत्र का सृजन किया है। लेकिन रामकाव्य परम्परा की दृष्टि से इसका कोई महत्त्व नहीं है। यह केवल परम्परा का निर्वाह करती है। **(क्रमशः)**

कविता

हिय में बसते हैं श्रीराम

डॉ. ओमप्रकाश वर्मा

सीतापति प्रभु रामचन्द्र के, चरणों में शतकोटि प्रणाम ।
जीवन में सुख-शान्ति बहाने, मनुज रूप आये इस धाम।।
रामनाम की महिमा अद्भुत, रामचन्द्र हैं सब सुख धाम ।
रामनाम के नित्य जपन् से, कटते जाते दुख अविराम ।।
जनम जनम के पाप कटत हैं, लेते भक्ति-भाव से नाम ।
रामरूप का ध्यान धरे जो, मन हो जाता शीघ्र अकाम ।।
रामनाम का गान करो मन, नहिं देना पड़ता कुछ दाम ।
ऐसा जीवन-धन मिलता है, हिय में बसते हैं श्रीराम ।।

अगर तुम्हारे पास यह भक्ति है, तो तुम्हें और किस बात की आवश्यकता है? मेरा भक्त ज्ञान, विज्ञान और वैराग्य की अनायास प्राप्ति करता है। सन्त ऐसा ही बताते हैं।

भक्ति के मार्ग का अनुगमन करके कोई भी मुक्ति को पा सकता है, भले ही वह पुरुष हो या स्त्री, उच्च जाति का हो या निम्न जाति का। भक्ति का अर्थ है सार्वभौमिक प्रेम। जब तुम भक्ति प्राप्त करोगे, तब मेरे तत्त्व तुम्हें स्पष्ट हो जाएँगे। जो मेरा अनुभव करता है, वह इसी जन्म में मुक्त हो जाता है।

– श्रीरामचन्द्र

प्रश्नोपनिषद् (४४)

श्रीशंकराचार्य

(सनातन वैदिक धर्म के ज्ञानकाण्ड को उपनिषद् कहते हैं। हजारों वर्ष पूर्व भारत में जीव-जगत् तथा उससे सम्बद्ध गम्भीर विषयों पर प्रश्न उठाकर उनकी जो मीमांसा की गयी थी, ये उन्हीं के संकलन हैं। वैदिक धर्म की पुनः स्थापना हेतु आचार्य ने इन पर सहज-सरस भाष्य लिखकर अपने सिद्धान्त को प्रतिपादित किया था। प्रश्नोपनिषद् पर लिखे उनके भाष्य का हिन्दी अनुवाद 'विवेक-ज्योति' के पूर्व-सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी द्वारा किया गया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' के पाठकों हेतु प्रस्तुत किया जा रहा है। –सं.)

तिस्रो मात्रा मृत्युमत्यः प्रयुक्ता
अन्योन्यसक्ता अनविप्रयुक्ताः।
क्रियासु बाह्याभ्यन्तरमध्यमासु
सम्यक्प्रयुक्तासु न कम्पते ज्ञः।।५/६।।

अन्वयार्थ – तिस्रः मात्राः (ओंकार की अ-उ-म् – ये तीन मात्राएँ), एकैकशः (अलग-अलग) अनविप्रयुक्ताः (अविधिपूर्वक प्रयोग किये जाने पर), मृत्युमत्यः (नश्वर फल देनेवाली हैं), (परन्तु वे ही) बाह्याभ्यन्तर-मध्यमासु (बाह्य, आन्तरिक तथा मध्य की) क्रियासु (क्रियाओं में) अन्योन्यसक्ताः (परस्पर सम्बद्ध रूप से), सम्यक् प्रयुक्तासु (समुचित रूप से प्रयोग किये जाने पर), ज्ञः (ज्ञाता या साधक) न कम्पते (विचलित नहीं होता)।।६।।

भावार्थ – ओंकार की अ-उ-म् – ये तीन मात्राएँ, अलग-अलग तथा अविधिपूर्वक प्रयोग किये जाने पर, नश्वर फल देनेवाली हैं, परन्तु ये ही बाह्य, आन्तरिक तथा मध्य अर्थात् जाग्रत, स्वप्न तथा सुषुप्ति में होनेवाली क्रियाओं में, समुचित तथा परस्पर सम्बद्ध रूप से प्रयोग किये जाने पर, ज्ञाता या साधक (अपनी निष्ठा से) विचलित नहीं होता।।६।।

भाष्य – तिस्रः त्रि-संख्याका अकार-उकार-मकार-आख्या ओंकारस्य मात्रा मृत्युमत्यः मृत्युः यासां विद्यते ता मृत्युमत्यो मृत्युगोचरात् अनतिक्रान्ता मृत्युगोचरा एव इत्यर्थः। ता आत्मनो ध्यान-क्रियासु प्रयुक्ताः, किं च अन्योन्यसक्ता इतरेतरसंबद्धाः अनविप्रयुक्ताः; विशेषेण-एकैक-विषय एव प्रयुक्ता विप्रयुक्ताः, न तथा विप्रयुक्ता अविप्रयुक्ताः, न अविप्रयुक्ता अनविप्रयुक्ताः।

भाष्यार्थ – अकार, उकार तथा मकार नामवाले तीन की संख्या में विद्यमान ओंकार के अंग मृत्यु से युक्त हैं; जिनकी मृत्यु होती है, वे मृत्यु का विषय होने से उसके परे नहीं, अपितु उसके अधीन ही होते हैं। परन्तु जब वे परस्पर सम्बद्ध होकर आत्मा के ध्यान की क्रिया में प्रयुक्त किये जाते हैं, तो उन्हें 'अनविप्रयुक्ता' कहा जाता है; और जब वे एक-एक विषय में अलग-अलग प्रयोग किये जाते हैं, तो उन्हें 'विप्रयुक्ताः' कहा जाता है; इस प्रकार जो विप्रयुक्ता न हो उसे 'अविप्रयुक्ता' कहते हैं और जो 'अविप्रयुक्ता' न हो उसे 'अनविप्रयुक्ता' कहते हैं।

भाष्य – किम् तर्हि, विशेषेण-एकस्मिन्-ध्यानकाले तिसृषु क्रियासु बाह्य-अभ्यन्तर-मध्यमासु जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्त-स्थान-पुरुष-अभिध्यान-लक्षणासु योग-क्रियासु सम्यक्-प्रयुक्तासु सम्यग्-ध्यानकाले प्रयोजितासु न कम्पते न चलति ज्ञः योगी यथोक्त-विभागज्ञ ओंकारस्य इत्यर्थः न तस्य एवंविदः चलनम् उपपद्यते।

भाष्यार्थ – तो फिर क्या? यह कि जब वे – बाह्य-अभ्यन्तर-मध्यम अर्थात् जाग्रत्-स्वप्न तथा सुषुप्त अवस्था में अलग-अलग तीन प्रकार से योग की क्रियाओं के समय, समुचित रूप से ध्यान के समय उपयोग की जाती हैं, तब ओंकार के उपर्युक्त विभाग को जाननेवाला योगी विचलित नहीं होता। अर्थात् उसके लिये इस प्रकार का विचलन सम्भव ही नहीं है।

भाष्य – यस्मात् जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्त-पुरुषाः सह स्थानैः मात्रा-त्रय-रूपेण ओंकार-आत्मरूपेण दृष्टाः। स ह्येवं विद्वान्-सर्वात्मभूत ओंकारमयः कुतो वा चलेत् कस्मिन् वा।।६।।

भाष्यार्थ – क्योंकि उस (योगी) ने जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्त पुरुषों के साथ ही त्रिमात्रा रूप ओंकार को अपनी आत्मा के रूप में देखा है। इस प्रकार का जो ज्ञाता – सर्वात्मभूत तथा ओंकारमय हो चुका है, वह भला कहाँ (या किस ओर) विचलित होगा?।।५/६।। **(क्रमशः)**

श्रीराम और युवा

स्वामी गुणदानन्द, रामकृष्ण मठ, नागपुर

मित्रता कैसी होनी चाहिए?

दीर्घ काल से कण्टाकीर्णमार्गों से वन-वन में सीता की खोज में भटकने के पश्चात् भगवान श्रीराम की भेंट वानर-यूथ से हुई। उस समय सुग्रीव और वानरराज बाली में विवाद चल रहा था। श्रीराम ने बाली से राज्य छीन कर न्यायपूर्ण रूप से निर्वासित सुग्रीव को राज्य प्रदान कर दिया। सुग्रीव ने राम को सीता की खोज करने में सहायता प्रदान करने का वचन दिया।

रामायण में यह प्रसंग मित्रता को समर्पित है। मित्रता कठिन परिस्थिति में एक विश्वास है।

सुग्रीव ने श्रीराम से कहा – एक दिन हमारे राज्य में एक राक्षस आ गया। बाली ने राक्षस को मारने के लिए उसका पीछा किया, परन्तु वह भागते-भागते एक गुफा में छिप गया। बाली ने भी उसका पीछा करते हुए गुफा में प्रवेश किया। मैं भी बाली के पीछे-पीछे गया और बाली ने मुझे गुफा के बाहर ही खड़ा रहने का आदेश दिया। मैंने एक वर्ष तक बाली की प्रतीक्षा की। एक दिन मैंने उस गुफा के अन्दर से रक्त बहते हुए देखा, मुझे लगा कि राक्षस ने बाली को मार दिया। मैंने गुफा के द्वार पर एक बड़ी चट्टान लगा दी और स्वयं भयभीत होकर वहाँ से अपने राज्य लौट आया। राज्य की प्रजा ने यह समझकर कि बाली मर गया है, मुझे राजा बना दिया। कुछ समय बाद अचानक बाली वापस लौट आया। राजा के पद पर आसीन देखकर बाली मेरा शत्रु बन गया।

बाली सुग्रीव से बहुत क्रोधित था और उस पर विश्वासघात करने का आरोप लगाया। बाली ने उसे देश से बाहर निकाल दिया और अपने भोग के लिए सुग्रीव की पत्नी को बलपूर्वक अपने पास रख लिया है। सुग्रीव अपने प्राणों की रक्षा के लिए ऋष्यमुख पर्वत पर हनुमानजी, जामवंत और कुछ वानर साथियों के साथ छिप गये, बाली श्राप के कारण ऋष्यमुख पर्वत पर नहीं पहुँच पाया। हनुमानजी ने अपनी बुद्धिमता और वाणी-कौशल से पहली भेंट में ही श्रीराम को प्रभावित कर सुग्रीव और श्रीराम की मित्रता करवाई। सुग्रीव ने राम से बाली को मारने और पत्नी को बचाने की विनती की।

श्रीराम ने जब यह पूरा वृत्तान्त सुनकर सुग्रीव को सहायता करने का वचन दिया, तब पहले तो सुग्रीव को श्रीराम पर विश्वास नहीं हुआ। वह सोचने लगा कि बाली तो बहुत बलवान है, राम उसे कैसे मार सकते हैं? ये कैसे मेरी सहायता करेंगे?

सुग्रीव के चेहरे पर शंका का चिह्न देखकर श्रीराम ने कहा – सुग्रीव, अब मैं तुम्हारा मित्र हूँ। अच्छे मित्र के छह गुण हैं। पहला, अपने मित्र के दु:ख को अपना दु:ख मानना। दूसरा, मित्र के दु:ख को दूर करने में सहायता करना। तीसरा, मित्र को गलत मार्ग पर जाने से रोकना। चौथा, मित्र पर शंका न करना। पांचवाँ, सदैव मित्र का कल्याण करना और छठा गुण है, विपत्ति के समय मित्र के साथ खड़े रहना। ये सभी अच्छे मित्र के लक्षण हैं और तुम मुझे अपना मित्र मान सकते हो। तब सुग्रीव ने राम की दो परीक्षाएँ लेकर उनकी शक्ति की परीक्षा ली। इसके बाद, उन्हें राम पर पूरा विश्वास हो गया। श्रीराम को सीता की खोज करनी थी और सुग्रीव को अपना राज्य और पत्नी वापस प्राप्त करनी थी। बाली से युद्ध के लिए सुग्रीव को श्रीराम की आवश्यकता थी और श्रीराम को सीता की खोज के लिए वानर सेना की आवश्यकता थी। इस प्रकार दोनों ने मित्रता करके एक-दूसरे की सहायता करने का संकल्प लिया।

पक्षपातरहित व्यवहार

सुग्रीव और बाली के बीच जब युद्ध हो रहा था, तब राम ने एक तीर से बाली को गम्भीर रूप से घायल कर दिया। बाली ने श्रीराम से कहा, 'मैंने आपको कोई हानि नहीं पहुँचाई है, न ही आपके राज्य में कोई अपराध किया है। आपने मुझे मारकर गलत किया। मेरे जैसे बन्दर जंगल में रहते हैं, जबकि आप जैसे मनुष्य नगरों में रहते हैं। इसलिए, आपको एक जानवर के रूप में मेरा शिकार करने का कोई

औचित्य नहीं है।''

अपनी पत्नी को वापस पाने की आशा में सुग्रीव के बजाय, आप मुझसे सम्पर्क कर सकते थे। चाहे आपकी पत्नी को किसी द्वीप पर या जमीन के नीचे बंदी बनाया गया हो, मैं उसे एक ही दिन में आपके पास वापस ले आता। मैं रावण को भी बाँधकर आपके पास पहुँचा देता। मेरी मृत्यु के बाद ही सुग्रीव के लिए सिंहासन पर बैठाना उचित होता। अब मुझे लगता है कि आप धर्मात्मा होने का दिखावा कर रहे हैं, लेकिन आप पापी हैं।

श्रीराम ने बाली की आपत्तियों के उत्तर में कहा, 'यह भूमि भी इक्ष्वाकु वंश के राजाओं के अधिकार क्षेत्र में आती है, देश पर अब सम्राट भरत का शासन है, जो असाधारण रूप से सदाचारी हैं। धर्म के अनुसार, एक छोटा भाई और एक गुणी शिष्य अपने ही बेटे के समान होते हैं। सुग्रीव तुम्हारा छोटा भाई है। वह निर्दोष है, तुमने उसके साथ बहुत गलत व्यवहार किया और उसे किष्किन्धा से बाहर निकाल दिया। छोटे भाई की विवाहित पत्नी बड़े भाई के लिए बहू के समान होती है। फिर भी, तुम वासना में अंधे होकर उसके साथ सहवास कर रहे हो। इसलिए, तुम एक जघन्य अपराध के दोषी हो। जो अपनी बेटी, बहन या अपने छोटे भाई की पत्नी के साथ वासनापूर्ण सम्बन्ध रखता है, उस व्यक्ति के लिए मृत्यु का दण्ड निर्धारित है। क्षत्रिय के कर्तव्य का पालन करते हुए, मैंने यहाँ राजा भरत के प्रतिनिधि रूप में तुम्हें वही दण्ड दिया है।

याद रखो कि तुम केवल एक बन्दर हो। किसी जानवर को लड़ाई के लिए चुनौती देना और उसके बाद ही उसे मारना पुरुषों की प्रथा नहीं है। उदाहरण के लिए, एक शिकारी, एक हिरण को मार देता है, चाहे वह चौकस हो या लापरवाह और चाहे वह उसके सामने हो या उससे दूर हो। तुम एक बन्दर हो, यह अप्रासंगिक है कि जब तुम मेरे बाण से घायल हुए, तो तुम किसी से लड़ रहे थे या नहीं। मनु के अनुसार, 'जो लोग लगातार पाप करते हैं, वे राजाओं द्वारा दण्डित किए जाने पर दोषों से मुक्त हो जाते हैं और पुण्य कर्म करने वालों की तरह स्वर्ग को प्राप्त करते हैं। एक चोर या तो दण्ड के माध्यम से या क्षमा किए जाने पर पापों से मुक्त हो सकता है। जो राजा किसी पापी को दण्ड नहीं देता, वह उस व्यक्ति के पाप का भागी बनता है।' तुमने भयंकर अपराध किया है। तुम्हें दण्ड देकर मैंने तुम्हें उस पाप से मुक्त कर दिया है।

इस दृष्टान्त में यह सन्देश मिलता है कि उपकार ही मित्रता का फल है। मित्र एक-दूसरे का मंगल करते हैं, एक-दूसरे पर उपकार करते हैं। मित्र एक-दूसरे की सभी कठिनाइयों को दूर करते हैं। सुग्रीव की पत्नी और उसकी सम्प्रभुता उसको वापस दिलाकर श्रीराम ने वानरों की उपस्थिति में सुग्रीव को दिया अपना वचन पूरा किया, जो श्रीराम की अटल मित्रता और पक्षपातरहित व्यवहार दर्शाता है।

न्यायोचित व्यवहार

वानर सेना द्वारा समुद्र पर सेतु-निर्माण के पश्चात् जब श्रीराम लंका पहुँचे, तब रावण ने 'शुक' और 'सारण' नामक कूटनीतिज्ञ मंत्रियों को यह पता लगाने के लिए कि राम कितने बलशाली हैं, उनकी सेना में कुल कितने वानर हैं, कितने अस्त्र-शस्त्र हैं और किस प्रकार के हैं तथा प्रमुख वानर नायकों के नाम क्या हैं, वानर के वेश में गुप्तचर के रूप में भेजा। रावण की आज्ञा से दोनों मायावी गुप्तचरों ने वानर का वेश बनाकर वानर सेना में प्रवेश किया। किन्तु इन गुप्तचरों को विभीषण ने पहचान लिया। विभीषण ने उन्हें राम के समक्ष लाया और कहा, 'हे राघव ! ये दोनों रावण के मंत्री 'शुक' और 'सारण' हैं, इन्हें आपकी सेना की गुप्तचरी करते पकड़ा गया है।' दोनों गुप्तचरों ने श्रीराम के समक्ष अपना पक्ष रखते हुए कहा, ''हे राजन् ! हम रावण के सेवक हैं और उनकी आज्ञा के दास हैं। राजभक्ति के कारण उनका आदेश पालन करने के लिये विवश हैं। उन्हीं की आज्ञा से गुप्तचर के रूप में आये थे। इसमें हमारा कोई दोष नहीं है।' रामचन्द्र ने दोनों गुप्तचरों की बातें सुन कर कहा, ''हे मंत्रियों ! हम तुम्हारे सत्य वचन से बहुत प्रसन्न हैं। आर्य शस्त्रहीन व्यक्ति पर प्रहार नहीं करते। हम तुम्हें कोई दण्ड नहीं देंगे। अत: तुम अपना कार्य पूरा करके निर्भय होकर लंका को लौट जाओ। तुम साधारण गुप्तचर नहीं, रावण के मंत्री हो।''

श्रीराम के जीवन से युवा ये सीख ले सकते हैं कि मित्र यदि सही है, तो हर परिस्थिति में उसका साथ देना चाहिए। मित्रता अटूट, न्यायोचित और पक्षपातरहित होनी चाहिए। युवाओं को अपने वचन के पालन के प्रति प्रतिबद्ध होना चाहिए, जो कठिन परिस्थितियों में उनकी सहायता करेगा। ○○○

रामगीता (२)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(पं रामकिंकर महाराज श्रीरामचरितमानस के अप्रतिम विलक्षण व्याख्याकार हैं। रामचरितमानस में रस है, इसे सभी जानते हैं और कहते हैं, किन्तु रामचरितमानस में रहस्य है, इसके उद्घाटक 'युगतुलसी' की उपाधि से विभूषित श्रीरामकिंकर जी महाराज हैं। उन्होंने यह प्रवचन रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के पावन प्रांगण में विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में दिया था। 'विवेक-ज्योति' हेतु इसका टेप से अनुलेखन श्रीराम संगीत महाविद्यालय, रायपुर के सेवानिवृत्त प्राध्यापक श्री राजेन्द्र तिवारी जी और सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द ने किया है। – सं.)

अद्भुत यह भूमि है, जहाँ ऐसे पात्र हैं ! जहाँ एक ओर सूर्पणखा जैसी नारी का चरित्र सामने आता है, जो वासनाओं की विकृति का एक मूर्तिमान रूप है, तो वहीं दूसरी ओर भक्तिमती शबरीजी हैं, जिनकी महिमा अद्भुत है। यह कौन-सी भूमि है? यह मन की भूमि है। इसके लिए आपको दण्डकारण्य की यात्रा करने की कोई आवश्यकता नहीं है। इसके लिए तो अगर हम और आप मन की यात्रा करें, मन की ओर चलें और मन में जिस तरह से विविध प्रकार के संकल्प-विकल्प, अच्छे और बुरे विचार आते हैं, जिस तरह से विचित्र-विचित्र मन:स्थितियों को आप और हम सब अनुभव करते हैं। मानो मन का जो सही चित्र है, मन का जो सही स्वरूप है, उसे यदि आप समझना चाहें, तो दण्डकारण्य के माध्यम से, उसके पात्रों के माध्यम से, उसमें घटी घटनाओं के माध्यम से उसे पूरी तरह से समझ सकते हैं। उसके लिए भगवान राम ने इस काण्ड में श्रोता के लिए यह शर्त लगा दी, जो अन्यत्र नहीं है। श्रोता से बहुत कहा जाता है, तो यह कहा जाता है कि मन लगाकर सुनिए, पर भगवान राम यहाँ लक्ष्मण से कहते हैं कि मैं जो कुछ कह रहा हूँ, उसे मन, बुद्धि और चित्त लगाकर सुनो।

सचमुच श्रद्धेय स्वामीजी ने जो प्रश्न किए हैं, वह प्रश्न ही मनुष्य के जीवन का शाश्वत प्रश्न है। वह शाश्वत प्रश्न इस रूप में सामने आता है। रामचरित-मानस की विशेषता यह है कि जीवन के दोनों पक्षों को, उसका जो समाधान है, वह हमें उसके माध्यम से मिलता है। जैसे बालकाण्ड को आप पढ़ते हैं, तो उसके अन्त में आपको एक आश्वासन मिलता है। बालकाण्ड का आप पाठ करेंगे, पढ़ेंगे, सुनेंगे, गायेंगे, तो आपके परिवार में, आपके घर में निरन्तर मंगल होता रहेगा।

सिय रघुबीर बिबाहु जे सप्रेम गावहिं सुनहिं।
तिन्ह कहुँ सदा उबाहु मंगलायतन राम जसु।। १/३६९

विवाह हो, मंगल हो, यह तो साधारत: सभी गृहस्थों की माँग होती है, सभी लोग चाहते हैं। जो बाते चाहते हैं, उसका आश्वासन दिया गया। पर इसके बाद? कितना भी कोई क्यों न चाहे, जीवन में सदा एक जैसी स्थिति नहीं होती, एक जैसा समय नहीं होता। सदा आपके परिवार में यज्ञोपवीत, विवाह ही नहीं होता रहेगा।

तब? अयोध्याकाण्ड उसको बिलकुल अलग रूप दे देता है। अयोध्याकाण्ड में आपको उसका पाठ करने से आपके घर में उछाह होगा, विवाह होगा, ऐसी कोई बात नहीं कही गई है। बल्कि बिलकुल उलटी बात कही गई। उलटी बात इसलिए कि आपकी पत्नी भी अनुकूल हो, परिवार भी अनुकूल हो, पुत्र भी अनुकूल, तो आपको कितना अच्छा लगता है ! पर अयोध्याकाण्ड में तो दृश्य ही बदला हुआ है। महाराज दशरथ को जिन महारानी कैकेयी पर इतना भरोसा है, उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है। अन्य जितने पात्र हैं, मंथरा भी वहाँ पर अपनी चतुराई, अपनी कला, अपनी कुटिलता से वातावरण को विषाक्त करने में समर्थ होती है, जिसका परिणाम होता है कि श्रीराम को वन जाना पड़ता है। अयोध्याकाण्ड का पाठ किसलिये है? इसका अर्थ है कि आप जीवन के एक ही पक्ष को अगर जीवन में देखेंगे और उसका समाधान चाहेंगे, तो समाधान नहीं मिलेगा। क्योंकि जैसा यह जीवन है, इसका उलटा भी होता है। यदि उलटा हुआ तब? अयोध्याकाण्ड के अन्त में आपको क्या फल मिला? वह फल जो साधारणतया व्यक्ति नहीं चाहता है।

भरत चरित करि नेमु तुलसी जो सादर सुनहिं।
२/३२६

अब वहाँ विवाह प्रसंग में तो इतना कुछ शर्त नहीं लगाई गई। उसमें तो कह दिया – **उपबीत ब्याह उछाह मंगल सुनि जे सादर गावहीं।** आनन्द से गाइए, आदरपूर्वक रस पीजिए। लेकिन इसमें कुछ बातें जोड़ दी गई हैं। श्रीभरत के चरित्र को नियमपूर्वक, आदर से जो श्रवण करता है, उसे क्या मिलता है? गोस्वामीजी कहते हैं – **सीयराम पद पेमु** – भगवान राम और श्रीसीताजी के चरणों में प्रेम मिलता है। उसके साथ-साथ दो वाक्य जुड़ा हुआ है। वह वाक्य दूसरे पक्ष का समाधान है और वह उत्तर है – **अवसि होइ भव रस बिरति** – यह जो संसार का रस है, उससे वैराग्य हो जाता है। बालकाण्ड यदि आपके राग को सन्तुष्ट करता है, तो ठीक उसके विपरीत अयोध्याकाण्ड आपको बिरागी बना देता है।

राग और विराग, ये जीवन के दो पक्ष हैं। बड़ा महत्त्वपूर्ण सूत्र है। मैं आशा करता हूँ, आप लोग भी मन, बुद्धि और चित्त, तीनों को लगाने की चेष्टा कर रहे होंगे। राग का दो प्रतिफल है। वह यह है कि राग का एक प्रतिद्वंदी है द्वेष। आपका जब किसी से राग हो और वह आपके विरुद्ध व्यवहार करे, आचरण करे, तो आपके मन में उसके प्रति द्वेष हो जाता है। अगर राग के बाद द्वेष हो गया, तो मनुष्य का जीवन और भी अधिक अभिशप्त हो गया। उसका पतन हो गया। पर राग का एक अन्य प्रतिद्वंदी है विराग। विषयी व्यक्ति के जीवन में राग के बाद द्वेष आता है और साधक के जीवन में राग के असफल होने पर विराग आता है। अगर राग जाने के बाद द्वेष हो जाये और सारे संसार में, परिवार में, समाज में हो ही रहा है। बाहर संसार में राग और द्वेष को लेकर ही तो टकराहट हो रही है। लेकिन अगर विराग आ जाये तो? विराग जब आता है, तो बहुत बढ़िया बात कही गई है। पद्मपुराण का एक श्लोक बड़ा सुन्दर है। किसी ने कहा, महाराज, इस रस को कौन छोड़े। तो बोले, इस रस को तो तुम चख लिए, पर एक रस और है। शायद वह तुम्हें उतना अच्छा न लगे, पर पीयोगे तो जीवन बड़ा रसमय हो जायेगा। वह रस कौन-सा है? वह श्लोक है – **वैराग्य रागरसिको भव भक्तिनिष्ठः।** वैराग्य को भी उन्होंने एक राग बता दिया। बोले, आप जब उस वैराग्य रस का अनुभव करेंगे, तो आपके जीवन में महानतम भक्ति का उदय होगा।

राग और विराग यह जो पक्ष है, वह बालकाण्ड और अयोध्याकाण्ड में है। अरण्यकाण्ड उस केन्द्र की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करता है कि समस्या का समाधान केवल बाहर ढूँढ़ने से नहीं मिलेगा। महानतम ग्रन्थों में भी केवल बाहर का उपदेश, लोगों को बड़ा अच्छा लगता है। जैसे रामायण में यह बताया गया कि भाई को भाई से कैसा व्यवहार करना चाहिए, पत्नी को पति से कैसा व्यवहार करना चाहिए, राजा को प्रजा से कैसा व्यवहार करना चाहिए। यह भी रामायण में है, पर रामायण का यह अन्तिम लक्ष्य नहीं है। यह तो आप भाषणों में बहुत सुनते आए हैं और सुनते ही रहेंगे। पर जब गहराई से विचार करके देखेंगे, तो रामायण का, रामचरितमानस का जो उद्देश्य है, वह समस्या के मूल की ओर आपका ध्यान आकृष्ट करता है। उसका अर्थ क्या हुआ? क्या करना चाहिए, यह बात तो मंच से कही जाती है और सुनी जाती है। लोग कहते हैं कि हाँ, यह बहुत अच्छी बात है। यह करना चाहिए, पर व्यक्ति कर नहीं पा रहा है। समस्या न कर पाने की है, समस्या जानने की नहीं है। जानने के बाद भी व्यवहार की जितनी बातें हैं, उनको बहुत अच्छी तरह से रखा जाता है, वे बहुत प्रिय लगती हैं, लेकिन सुनने के बाद जब व्यक्ति व्यवहार में आता है, तब वे सारी बातें उससे उलटी होने लगती हैं। तब? मानो प्रश्न का समाधान, समस्या का समाधान केवल बाहर नहीं है। समस्या ढूँढ़ने के लिए आपको भीतर की ओर जाना होगा।

भीतर की ओर जाने का अर्थ क्या हुआ? समस्या का मूल उद्गम केन्द्र मन है। श्रद्धेय स्वामीजी महाराज ने जो बहुत विलक्षण उद्धरण दिया, वह महाभारत के महानतम प्रश्नों में से एक है। भगवान श्रीकृष्ण वहाँ युधिष्ठिर को उपदेश देते हैं और उस उपदेश में भी भगवान कृष्ण ने यही कहा कि तुमने भले ही शत्रुओं को परास्त कर दिया, पर अभी तुम्हें एक और शत्रु को जीतना है। उन्होंने एक बहुत मीठी बात कही कि उस युद्ध में तो तुम्हारे बड़े सहायक थे, पर इस युद्ध को तुम्हें अकेले लड़ना है और अकेले जीतना है। यह शत्रु मन है। तुमने मन को जीता या नहीं? अगर तुम मन को नहीं जीत पाए, तो वस्तुतः कोई विजय प्राप्त नहीं की।

श्रीरामचरितमानस में आप देखेंगे, सबके प्रश्नों के

समापन के बाद दण्डकारण्य, किष्किधा, लंका और उसके बाद भगवान राम का राज्य होता है। रामराज्य का विस्तार से वर्णन करने के बाद एक अनोखी बात है कि उसमें जितनी अच्छी वस्तुएँ होती हैं, उन सबका वर्णन है। कैसा चरित्र है, कैसा सुख है, कैसी समृद्धि है और कैसे लोग स्वस्थ हैं, यह सब है, पर एक अनोखी बात है, उसमें सेना का वर्णन नहीं है। राज्य है, तो सेना होगी। इससे पहले भी सेना का वर्णन है। श्रीभरत जब चित्रकूट गये थे, तो सेना लेकर गये थे। उसके पहले मिथिला में भी सेनाओं का वर्णन है। पर रामराज्य के इतने विस्तृत वर्णन में गोस्वामीजी ने सेना का वर्णन नहीं किया। क्या उनको ध्यान नहीं रहा कि राज्य में सेना कितनी आवश्यक है? गोस्वामीजी ने सूत्र दिया। उनसे पूछा गया कि रामराज्य में लोग इतने प्रसन्न थे, तो आप सेना नहीं लिखते। किन्तु सेना के द्वारा ही तो लड़ाई जीती जाती है। क्या अयोध्यावासी लड़ते नहीं थे? क्या कोई लड़ाई नहीं लड़ते थे? क्या नहीं जीतते थे? गोस्वामीजी कहते हैं – लड़ाई के लिए सेना की आवश्यकता उस समय है ही नहीं। जिस लड़ाई को भगवान राम ने लंका में लड़ी, वह लंका की लड़ाई तो पूरी हो गई। उस लड़ाई के लिए जिस सेना की आवश्यकता थी, वह औपचारिक रूप से अब आवश्यक नहीं है। क्यों?

दंड जतिन्ह कर भेद जहँ नर्तक नृत्य समाज।
जीतहु मनहि सुनिअ अस रामचन्द्र कें राज।। ७/२२

श्रीरामचन्द्र की सबसे बड़ी उपलब्धि थी कि लोगों ने मन पर विजय पाने का प्रयास किया। वे मन के विजेता बने। यह वाक्य कितने महत्त्व का है? मानो सब कुछ हो जाने के बाद भी अगर व्यक्ति मन की समस्या का समाधान नहीं करेगा, मन की ओर दृष्टि नहीं डालेगा, मन की ओर नहीं देखेगा, तो वह हमेशा समस्याओं से बाहर जूझता रहेगा, लेकिन समस्या के मूल तक नहीं पहुँचेगा। यह भी कृपया ध्यान रखिएगा कि मन पर ध्यान देते-देते दूसरे के मन पर ध्यान न देने लगिएगा। यह बहुत बड़ा रोग है। मन का विश्लेषण सुनकर अगर मन के सारे विश्लेषण दूसरे के मन से जोड़ दें, तब तो इससे बढ़कर दुर्भाग्यपूर्ण कोई ज्ञान हो ही नहीं सकता।

आपने सारा मन का विश्लेषण सुना और दूसरों को बताने लगे कि तुम्हारे मन में क्या है, तुम्हारे मन में क्या कमी है, तुम्हारे मन में क्या दोष है। शायद आपका मन प्रसन्न होता हो कि अच्छा है, इनका ध्यान दूसरों के मन की ओर है, इनका मेरी ओर ध्यान नहीं है। अब इनसे मैं जो चाहूँगा, वह तो करा ही लूँगा।

मानो सूत्र यह है कि लक्ष्मणजी के द्वारा जो प्रश्न किए गये, वह विभिन्न स्थिति में किये गये। वस्तुत: लक्ष्मणजी महानतम तत्त्वज्ञ हैं, महानतम ज्ञानी है, यद्यपि उनका बहिरंग रूप एक सेवक का है। ऐसा सेवा करनेवाला तो कोई मिलेगा ही नहीं। पर एक उपदेशक के रूप में लक्ष्मण और दूसरे श्रोता के रूप में लक्ष्मण, ये दोनों प्रसंग बड़े अनोखे हैं। एक तो श्रीलक्ष्मणजी ने जब निषादराजजी को उपदेश दिया था। प्रभु वन-यात्रा में जब रात्रि में शीशम वृक्ष के नीचे विश्राम करते हैं, तब लक्ष्मणजी ने उपदेश दिया। वह उपदेश इतना प्रभावशाली था कि उसे सुनकर निषादराज धन्य हो गये। दूसरा प्रसंग, जहाँ लक्ष्मणजी श्रोता के रूप में बैठकर भगवान राम से प्रश्न करते हैं। किस बात के लिये प्रश्न करते हैं? उनके लिये किसी भौतिक वस्तु पाने के लिये कोई वस्तु ही शेष नहीं है। आप उन शब्दों पर ध्यान दें। क्या उद्देश्य होना चाहिए? सब कुछ सुनने का, पढ़ने का वास्तविक उद्देश्य क्या है? वह है जिसके लिए लक्ष्मणजी ने कहा – **सोक मोह भ्रम जाय।**

मैं चाहता हूँ कि शोक नष्ट हो जाये, मोह नष्ट हो जाये और भ्रम नष्ट हो जाये। अगर ये प्रश्न आपकी बुद्धि में आते हैं, तो आप स्वच्छता की दिशा में बढ़ रहे हैं। कई लोग कहते हैं कि ये क्या प्रश्न हैं, मेरे मन में तो कभी कोई प्रश्न ही नहीं उठता। तब मुझे समझ में आ जाता है कि बेचारे को बुद्धि की मंदाग्नि हो गई है। जिसको भूख नहीं लगती, वह कह सकता है कि मुझे तो भूख ही नहीं लगती। लेकिन विडम्बना यह है कि यह प्रशंसा की बात नहीं है, यह तो अस्वस्थता का लक्षण है। वैसे ही बुद्धि की भूख न लगे, तो लोग समझ रहे हैं कि हम बहुत ऊँची स्थिति में हैं। कैसी उलटी बात है। आपकी बुद्धि में कोई प्रश्न ही नहीं उठता, आपके मन में समस्याओं को समझने की इच्छा नहीं होती, तो सचमुच आप अपने आपको कितना भ्रम में डाले हुए हैं, इसको आप जानते ही नहीं। ये तीन शब्द बड़े महत्त्व के हैं। अब इसको और थोड़ा समझने के लिए सन्नद्ध हो जायँ। **(क्रमश:)**

सबकी श्रीमाँ सारदा

स्वामी चेतनानन्द, अमेरिका

(स्वामी चेतनानन्द जी महाराज वेदान्त सोसाइटी, सेंट लुइस के मिनिस्टर-इन-चार्ज हैं। विवेक ज्योति के पाठकों के लिये उनके अँगेजी निबन्ध का हिन्दी अनुवाद भोपाल के लक्ष्मीनारायण इन्दुरिया ने किया है।)

माँ की अपने बच्चों के प्रति चिन्ता

प्रथम विश्वयुद्ध के समय लोगों को भीषण आर्थिक संकट और आवश्यक वस्तुओं की कमी का सामना करना पड़ा था। गरीब ग्रामवासियों के पास वस्त्र खरीदने तक के लिए पैसे नहीं थे। एक दिन प्रात: देशरा ग्राम का वृद्ध भाट जयरामबाटी आया। वह अपनी आजीविका चलाने के लिए घर-घर जाकर सारंगी बजाता था और भक्ति गीत गाता था। गिरीश घोष जब माँ के पास जयरामबाटी आए थे, तब उसने आगमनी गीत सुनाए थे। इस भाट को माँ बहुत पसंद करती थीं। आज जब माँ ने उसकी दुरवस्था देखी, तो उन्होंने उसे कुछ तेल उसके रुखे त्वचा में लगाने के लिये दिया। माँ उसके लिए एक पान का बीड़ा लगाते हुए उसकी दुखमय कहानी को सुनीं और फिर उसे प्रसाद खिलायीं। बात करते हुए हरीदास ने माँ को बताया कि उसके पास अतिरिक्त वस्त्र नहीं है। उस दिन प्रात: स्नान के बाद माँ ने गीले कपड़े को जिसका उपयोग उन्होंने दो-तीन बार किया होगा, धूप में सुखा दिया था। उसकी व्यथा सुनने के बाद माँ ने उस वस्त्र को हरीदास को दे दिया। माँ की भेंट को अपने सिर से लगाकर वह वृद्ध व्यक्ति अभिभूत होकर रोने लगा और चला गया।

ठाकुर के एक गृहस्थ भक्त और 'श्रीरामकृष्ण पुँथी' के लेखक अक्षय सेन, जयरामबाटी से कुछ मील दूर मैनापुर में निवास करते थे। वृद्धावस्था के कारण, वे माँ के पास नहीं आ पाते थे, लेकिन बीच-बीच में वे थोड़ा भैंस का घी, व अन्य चीजें माँ के उपयोग के लिए भेजते थे। एक बार अक्षय की भेंट लेकर माँ सारदा के पास एक अधेड़ स्त्री आई। वह दोपहर के पहले आ गई थी और उसने माँ के घर स्नान करके भोजन किया। उसे थका हुआ देखकर विश्राम करने और रात रुकने के लिए कहा। माँ के कमरे के बाहर बरामदे में उसका बिस्तर लगाया गया। महिला को हल्का बुखार और पीड़ा थी, इसलिये वह शीघ्र सो गई। रात में अचेत अवस्था में उसने बिस्तर को गंदा कर दिया। माँ सदा की भाँति प्रात: बहुत जल्दी उठ जाती थीं। जब उन्होंने उस स्थिति को देखा और यह अनुमान लगा लिया कि यदि घर के अन्य लोगों ने इसे देख लिया, तो महिला के साथ दुर्व्यवहार हो सकता है, अत: माँ ने उसे धीरे से जगाया। उन्होंने उसे मुरमुरा और गुड़ देते हुए प्रेम से कहा – ''बेटी तुम अभी चली जाओ, जिससे धूप होने के पहले तुम घर पहुँच सकोगी।'' स्त्री ने माँ को प्रणाम किया और चली गई। माँ जल्दी से गंदी चटाई को लेकर तालाब गई, उसे धोया और सूखने के लिए घास में फैला दिया। उन्होंने बरामदे को भी साफ किया और गाय के गोबर से मिट्टी के फर्श की लिपाई की। उस समय कोई नहीं जान सका कि क्या घटना घटी।

यह कहानी जिस समय की है, उस समय जयरामबाटी सचमुच सुदूर स्थित एक गाँव था, जहाँ केवल पैदल अथवा बैलगाड़ी के द्वारा पहुँचा जा सकता था। शरद ऋतु में मार्ग नरम तथा वर्षाकाल में कीचड़युक्त रहता था, जिससे बैलगाड़ी गाँव तक नहीं आ सकती थी। जयरामबाटी से लगभग २० मील पर स्थित गाँव गारबेटा निवासी दम्पती ने माँ के बारे में सुना था और उनकी कृपा प्राप्त करना चाहते थे। एक दिन दोपहर बाद उनलोगों ने अपने चार बच्चों के साथ बैलगाड़ी से यात्रा प्रारम्भ की, दूसरे दिन प्रात: जयरामबाटी के दक्षिण में कुछ मील की दूरी पर स्थित जिबटा पहुँचे

और फिर माँ के घर तक पैदल चलकर आए। सब लोग थक गए थे, विशेषकर छोटी बच्ची जो मलेरिया से पीड़ित थी। गाँव और गाँव के लोगों से वे पूरी तरह अनभिज्ञ थे। माँ के द्वार पर वे लोग एकदम दुविधाग्रस्त खड़े थे। जैसे ही माँ ने उनके आने की बात सुनी, माँ ने उन्हें प्रेमपूर्वक घर के भीतर बुलाया। उन सभी लोगों ने माँ को झुककर प्रणाम किया और उनके स्नेह के चमत्कार से वे लोग आश्वस्त हो गए। छोटी बच्ची के लिए माँ ने दूध और दवा की व्यवस्था की। बनर्जी ताल में दम्पती ने स्नान किया और अपने नित्य पूजा के बाद माँ ने उन लोगों को दीक्षा दी।

भोजन के बाद जयरामबाटी से ३४ मील दूर बर्धमान की अपनी यात्रा पुन: प्रारम्भ करने की इच्छा उन लोगों ने व्यक्त की। अश्रुपूरित नेत्रों से उन लोगों ने माँ को प्रणाम किया। अनिच्छापूर्वक माँ ने उन्हें विदा किया और वे लोग जब तक दिखते रहे, माँ उन्हें निहारती रहीं। उनके जाने से माँ इतनी दुखी थीं कि दोपहर में विश्राम करने के लिए भी नहीं गई और उस परिवार के बारे में अपने बरामदे में बैठकर गहन चिन्तन करने लगीं। इसी बीच एक महिला भक्त को बाहर उनका तौलिया सूखते हुए मिला, जिसे लेकर वह माँ के पास गई, जिससे उनका दुख और बढ़ गया। माँ को शोक करते हुए देख ब्रह्मचारी गोपेश (बाद में स्वामी सारदेशानन्द) तौलिया लेकर दम्पती को पकड़ने के लिए दौड़े। उस समय वे लोग गाँव की सीमा पर बनर्जी तालाब के पास थे। स्वाभाविक रूप से वे लोग लज्जित हो गए। उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करके वे लोग देशरा की ओर पुन: पैदल चलने लगे, जहाँ उनकी बैलगाड़ी उनकी प्रतीक्षा कर रही थी, ब्रह्मचारी गोपेश से समाचार सुनकर माँ प्रसन्न हो गईं।

लेकिन शीघ्र ही पुण्यपुकुर के पास स्त्री की गीली साड़ी धूप में सूखते हुए मिल गई। माँ ने जोर से दुख प्रगट करते हुए कहा – ''कल मेरी बच्ची को उसकी साड़ी नहीं मिलेगी। वह याद करेगी कि उसने साड़ी माँ के घर छोड़ दिया।'' दूसरी स्त्री ने अभद्र ढंग से ताना मारते हुए कहा – ''वह बच्चों की फौज के साथ अपने आप को किस प्रकार सम्हालती होगी?'' माँ ने रुँधे स्वर में कहा – ''गलती करना स्वाभाविक है। मेरी बच्ची के लिए यहाँ से जाना कठिन था। वह यहाँ एक रात भी नहीं रुक पाई, न उसे मुझसे बात करने का पर्याप्त समय मिल पाया।'' ब्रह्मचारी गोपेश जाने के लिए तत्पर थे, लेकिन नलिनी ने कहा, ''बहुत हो गया ! तुम्हें पुन: जाना नहीं पड़ेगा, अब तक वे लोग बहुत आगे चले गए होंगे।'' लेकिन ब्रह्मचारी गोपेश ने साड़ी लेकर माँ से कहा – ''वे अधिक दूर नहीं गए होंगे। मैं शीघ्र लौट आऊँगा।'' प्रफुल्लित होकर माँ ने कहा – ''बेटा सूर्य तेज है। अच्छा होगा, यदि तुम छाता लेकर जाओ।'' वे लोग मुख्य मार्ग पर लगभग अपनी बैलगाड़ी तक पहुँच गए थे। उन लोगों ने ब्रह्मचारी गोपेश को साड़ी लेकर अपनी ओर दौड़ते देखा, भक्त लोग लज्जित हो गए और उनसे क्षमा-याचना करने लगे। उन लोगों ने कहा – ''सच में साड़ी लेकर इतना कष्ट उठाकर यहाँ आने की कोई आवश्यकता नहीं थी।'' लेकिन ब्रह्मचारी गोपेश ने समझाया कि माँ चिंतित थीं और उनकी इस कठिन परिस्थिति को देखकर दुखी थीं। वे माँ को प्रसन्न करने के लिए यह साड़ी लेकर आए हैं। माँ सारदा से उनकी यह छोटी-सी भेंट ने उनके मन में एक गहरा प्रभाव छोड़ा। उन्होंने सच्ची माँ के अद्‌भुत स्नेह का अनुभव किया। **(क्रमशः)**

पृष्ठ १५२ का शेष भाग

ऐसेहिं करब धरहु मन धीरा।[६]

हम देखते हैं कि अपनी प्रियतमा सीता को तत्काल मुक्त कराने हेतु व्यग्र श्रीराम सर्वसमर्थ होते हुये भी मर्यादा की रक्षा हेतु तीन दिन तक समुद्र की अर्चना करते हैं। यहाँ उनका अपरिमित धैर्य दृष्टिगोचर होता है।

भगवान श्रीराम राजा जनक के दरबार में शिव-धनुष को तोड़ देते हैं। तदनन्तर परशुरामजी आते हैं और भगवान राम और लक्ष्मणजी के लिये कर्कश वाक्यों का प्रयोग करते हैं, यहाँ तक कि वध करने तक की धमकी दे देते हैं, किन्तु सर्वशक्तिमान भगवान श्रीराम उनके सारे कठोर वचनों को धैर्यपूर्वक सुनते और उद्विग्न हुये बिना अत्यन्त विनम्रता के साथ उनका यथायोग्य उत्तर देकर उनके क्रोध का शमन कर उन्हें संशय मुक्त करते हैं। ऐसे अपार धैर्यशाली हैं श्रीराम। यदि मानव भगवान श्रीराम के इन दो गुणों को अपने जीवन में अपनाये, तो वह जीवन में सफलता और शान्ति को प्राप्त कर सकता है। ○○○

सन्दर्भ ग्रन्थ – १. श्रीरामचरितमानस, १/२०८(ख) **२.** वही,२/९/५,६-७ **३.** वही, ६/७०/छन्द **४.** वही, ६/८५/छन्द **५.** ६/७९/४-५ **६.** वही, ६/५०/५

गीतातत्त्व-चिन्तन

बारहवाँ अध्याय (१२/८)

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्द जी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के संस्थापक सचिव थे। उनका 'गीतातत्त्व-चिन्तन' भाग-१ और २, अध्याय १ से ६वें तक पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुका है और लोकप्रिय है। ८वाँ अध्याय 'विवेक ज्योति' के सितम्बर, २०१६ से नवम्बर, २०१७ अंक तक प्रकाशित हुआ था। अब प्रस्तुत है १२वाँ अध्याय, जिसका सम्पादन ब्रह्मलीन स्वामी निखिलात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहङ्कारः समदुःखसुखः क्षमी।।१३।।

यः सर्वभूतानां अद्वेष्टा मैत्रः च करुणः (जो पुरुष सर्वभूतों में द्वेष-भाव से रहित, प्रेमी, करुणावान) एव निर्ममः निरहंकारः (तथा ममता से रहित, निरहंकारी) समदुःखसुखः क्षमी (सुख-दुख में समान तथा क्षमाशील है)।

''जो पुरुष सर्वभूतों में द्वेष-भाव से रहित, प्रेमी, करुणावान तथा ममता से रहित, निरहंकारी, सुख-दुख में समान तथा क्षमाशील है (वह मुझको प्रिय है)।''

ज्ञानी भक्त किस रूप में भगवान को चाहता है और उस भक्त के जीवन में कौन-कौन से गुण विशेष रूप से प्रकाशित होते हैं, उन्हीं तैंतीस गुणों, लक्षणों का वर्णन भगवान ने तेरहवें श्लोक से आरम्भ करके आठ श्लोकों में बताया है। ज्ञानी भक्त का सभी के प्रति मैत्री भाव होता है, वह किसी से द्वेष नहीं करता और उसमें करुणा भरी होती है। भगवान कहते हैं कि ऐसा भक्त निर्मम होता है। यहाँ निर्मम शब्द उसके सामान्य अर्थ निष्ठुर के रूप में प्रयुक्त नहीं हुआ है। जो व्यक्ति सबके लिए मित्रता का भाव रखता हो, वह निष्ठुर हो ही कैसे सकता है? यहाँ निर्मम से तात्पर्य है – ममेति बुद्धिः न यस्मात्... मेरेपन का भाव जिसमें न रहे, वह इस निर्ममता की निशानी है।

संसार के लोग भिन्न-भिन्न कारणों से दुःखी रहते हैं। कोई कहता है मेरा धन नष्ट हो गया। कोई कहता है मेरा पुत्र काल-कवलित हो गया। मैं के साथ अनुबन्धित जो कुछ भी है, उसके नाश से दुःख की अनुभूति होती है। भक्त रोता भी है, तो इसलिए कि उसने भगवान को छोड़कर संसार की किसी वस्तु को अपना समझा। उसे अपनी भूल का भान रुला देता है। संसारी रोता है, जब उसका कुछ मेरा नहीं रहता और भक्त रोता है, जब संसार में उसे कुछ मेरा दिखने लगता है। भक्त भगवान से कहता है कि यह जो पदार्थ संसार में आने पर मुझे मेरा लगने लगा, जिससे मेरा सम्बन्ध बन गया, उसे कृपा करके मुझसे अलग कर दो। 'प्रभो ! पदार्थ भी रहे, संसार भी रहे, पर संसार के साथ मुझे बाँधने का यह जो सूत्र है, उसकी गाँठ संसार से छुड़ाकर अपने साथ बाँध लो।' यह भक्त की वृत्ति होती है। भक्त जो संसार में कुछ भी मेरा करके नहीं देखना चाहता, वही होता है, उसका निर्मम होना। अपने मुँह किसी को मेरा न कहते हों, तो ममत्व भी न रहता हो, ऐसी बात नहीं है। मेरेपन का भाव तो मन के अन्दर गूढ़ रहता है। शब्दों के द्वारा पकड़ में नहीं आता।

रामकृष्ण परमहंस कहा करते थे कि संसार में तो रहो, पर बड़े घर की दासी की तरह रहो, जो मालिक के बच्चे को मेरा भी कहती है और उस पर पूरी ममता रखती है। पर जानती है कि उसका असली ममत्व मालिक के बच्चे पर नहीं, अपने ही बच्चे पर है। मालिक के घर में तो उसके रहने का काल भी अनिश्चित है। ठाकुर कहते थे कि संसार में रहकर अपने सम्बन्धियों से प्रेम तो करो, पर भीतर जानो कि यहाँ अपना कोई नहीं। अपना असली सम्बन्ध तो भगवान के चरणों से है। ममत्व के अन्दर जो संसार भरा है, जैसे नाम-यश, धन-सम्पत्ति, परिजन-परिवार उन सबसे

मम को खाली करके उनके बदले उसके भीतर भगवान को भरो। निर्मम होना भक्त का निष्ठुर हो जाना नहीं है। वह तो अपना ममत्व का सारा सम्बन्ध भगवान के साथ जोड़कर रखता है, यही उसका लक्षण है।

श्रीकृष्ण ने यहाँ पर अर्जुन को जो करुण के बाद निर्मम होना बताया है, उसका अपना एक मनोवैज्ञानिक महत्त्व है। मनुष्य के मन में किसी के प्रति जैसे ही करुणा आती है, साथ ही साथ स्वभावत: उसके प्रति ममता का भाव भी आ जाता है। दृष्टान्त के रूप में हम कथाएँ इसलिए पढ़ते हैं कि वे कभी न कभी हमारे जीवन में साकार होती हैं। राजा भरत की कथा हम पढ़ते हैं कि मृगशावक के प्रति उनके मन में करुणा उपजी। उन्होंने उस शावक के जीवन को बचा लिया। वहाँ तक तो ठीक था, पर उसके बाद उनके मन में उस शावक के प्रति जो ममता प्रवेश कर गई, उसके कारण उनका जो हाल हुआ, हम वह कथा में पढ़ते हैं। इसीलिए कृष्ण अर्जुन को समझाते हैं कि करुणावान तो बनो, पर सावधानी रखना कि उसके साथ-साथ ममता प्रवेश न कर जाए। संसार में तुम्हारे सबसे सम्बन्ध वाचिक बने रहें, परन्तु भगवान के साथ हमेशा अपना मानसिक सम्बन्ध बनाए रहो। यह निर्ममता की निशानी है। मनुष्य के जीवन में जितने भी दु:ख आते हैं, उनकी जड़ में संसार के सम्बन्धों के प्रति ममत्व ही रहता है। जिसने ममत्व के इस सम्बन्ध को भगवान के साथ जोड़ दिया, उसके जीवन में सुख और दु:ख, धूप और छाया की तरह आते हैं और चले जाते हैं। उसके ऊपर इनका कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

भक्त का पाँचवा गुण बताया निरहंकार होना। उसमें अहंकार न हो। इसका अर्थ ऐसे भी कर सकते हैं कि जो ईश्वर के कर्तृत्व को हुँकारता नहीं है, हुँकार नहीं भरता है या समर्थन नहीं करता है, वह अहंकारी है। इस संसार को भगवान ने बनाया है, इतना तो हम जानते ही हैं। हमारे मन में यह भाव भी रहता है कि भगवान ही इस रचना के द्वारा खेल कर रहे हैं और यहाँ जो कुछ भी होता है, वह ईश्वर की इच्छा से ही होता है, ऐसा भी हम कहते हैं और यही मानते भी हैं। जब ऐसा है, तो जो भी घटना घटे, उसमें हमारा समर्थन होना ही चाहिए। समर्थन न रहने से अहंकार आकर भक्त और भगवान के बीच में खड़ा हो जाता है और वही व्यक्ति के दु:ख का कारण बनता है। भक्त का भाव तो यह है – **राजी हैं हम उसी में जिसमें तेरी रजा है।** क्रिया तो करें, पर उसमें अहम् न प्रवेश कर जाए, यह भक्त की साधना है। वह अपने जीवत्व को ईश्वरत्व में डाल देने का प्रयास करता है। वह कहता है, 'प्रभो! तुम्हीं अन्तर्यामी के रूप में यहाँ पर बैठे हो। तुम्हीं सुख-दु:ख का भोग करो। ये जो जीवत्व दिखाई देता है, वह तुम्हारा ही है। भोक्तृत्व जो दिखाई दे रहा है, वह भी तुम्हारा ही है।' भक्त की मानसिकता, उसकी साधना यही है कि वह 'मैं' और 'मेरे' को ले जाकर भगवान से संयुक्त कर दे। हम सब जीव जिसके द्वारा आपस में बँधे हैं, उसको अज्ञान का बन्धन कह देना, तो उसकी भावात्मक व्याख्या हो गई। अज्ञान का प्रत्यक्ष रूप है 'मैं' और 'मेरा'। मैं और मेरा की डोर से यह जीव बँधा हुआ है। ज्ञानी इस बन्धन को काट देना चाहता है और भक्त इस बन्धन से छूटना चाहता है। ज्ञानी और भक्त की दृष्टि में एक सूक्ष्म अन्तर है। जिसके कारण भक्त की दृष्टि में एक विशेष रस उत्पन्न हो जाता है। निरहंकारी तो दोनों ही बनना चाहते हैं। पर ज्ञानी का तरीका दूसरा है। वह तो अपने अहं का इतना विस्तार कर लेता है कि वही सर्वस्वरूप हो जाता है। अहंकार से मुक्त होने का एक तरीका है **सोऽहं** का – यह कि मैं वही ब्रह्मस्वरूप हूँ। यह ज्ञानी की साधना है। इस साधना में ज्ञानी अपने अहं का इतना विस्तार करता है कि वह पूरे विश्व, पूरे ब्रह्माण्ड पर छा जाता है। संसार में ऐसा कोई स्थान नहीं बचता, जहाँ उसका अहं न पहुँच पाता हो। ज्ञानी अपने अहं का विस्तार करता है। इसको महान अहं की साधना भी कहते हैं। इस अनन्त अहं-वाले ज्ञानी को माया की डोर लपेटती तो है, पर छोटी पड़ जाती है। भक्त की साधना दासोऽहम् की साधना है, जिसका स्वरूप यह है – मैं तुम्हारा दास हूँ। अहंकार मेरा नहीं प्रभु, तुम्हारा रहे। इसको महानतत्त्व की साधना भी कहते हैं। महान तुम का भाव। भक्त कहता है कि यह अहंकार जो मेरा दिखाई देता है, उसे मैं तुम्हारे चरणों में अर्पित करता हूँ। तुम ही रहो, मैं नहीं रहना चाहता। माया की डोर तो भक्त को भी बाँधती है, पर भक्त अपने अहं को इतना छोटा, इतना सूक्ष्म बना लेता है कि डोर की गाँठ में से फिसलकर निकल आता है। उसमें बँधता नहीं। मैं और मेरे की इस डोर को ज्ञानी असंगता का, अनासक्ति का शस्त्र लेकर काट देता है। बन्धन से मुक्ति तो बन्धन काटकर भी

शेष भाग पृष्ठ १८४ पर

श्रीरामचन्द्र जयन्ती विशेष

संस्कृत साहित्य में श्रीराम

डॉ. अरुपम सान्याल, वाराणसी

संस्कृतकाव्यों में श्रीमद्वाल्मीकि रामायण को आदि काव्य कहा जाता है और आदि कवि हैं श्री वाल्मीकि। आदि काव्य से ही लौकिक संस्कृत साहित्य की यात्रा प्रारम्भ होती है। अत: संस्कृत साहित्य की सृष्टि के मूल में ही श्रीरामचन्द्र जी हैं। परवर्ती समय में अनेकों संस्कृत साहित्य की कृतियों के उपजीव्य हुए हैं श्रीरामचन्द्र।

श्रीराम की यह कथा बहुत परवर्ती कृतियों के उपजीव्य स्वरूप होगी। केवल यही नहीं, यह श्रीरामचन्द्र की चरित-गाथा अजर और अमर है। जब तक पर्वत और नदियाँ धरातल में अवस्थित रहेगीं, तब तक यह गाथा लोक में प्रसारित होती रहेगी।

यावत् स्थास्यन्ति गिरय: सरितश्च महीतले।
तावद्रामायणी कथा लोकेषु प्रचरिष्यति।।

श्रीवाल्मीकि मुनि द्वारा प्रकाशित श्रीरामचन्द्र की चरित्रकथा ने परवर्तीकाल में रचे गये संस्कृत कवियों की कृतियों को बहुत प्रभावित किया है। वाल्मीकि रामायण जैसे आनन्द रामायण, अध्यात्म रामायण, भुशुण्डि रामायण इत्यादि रामायण इस वाक्य के साक्ष्य स्वरूप हैं। विविध प्रकार से रामचरित्र को संस्कृत कवियों ने चित्रित किया है। अत: विविध प्रकार से श्रीरामचन्द्र जी के चरित्र का वर्णन हमें मिलता है। पद्मपुराण में कहा गया है –

चरितं रघुनाथस्य शतकोटिप्रविस्तरम्।
येषां वै यादृशी बुद्धिस्ते वदन्त्येव तादृशम्।।
न तत् पुराणं न हि यत्र रामो
यस्यां न रामो न च संहिता सा।
स नेतिहासो न हि यत्र राम:
काव्यं न तत् स्यान्नहि यत्र राम:।।

अर्थात् श्रीरघुनाथ का चरित्र अत्यन्त उदात्त और गम्भीर है, जिनकी जैसी बुद्धि है, वे वैसे उनके चरित्र के सम्बन्ध में कहते हैं। वह पुराण नहीं, जहाँ राम नहीं, वह इतिहास नहीं, जहाँ श्रीराम नहीं, वह संहिता नहीं, जहाँ राम नहीं हैं और वह काव्य नहीं, जहाँ श्रीराम नहीं हैं।

इस श्लोक से स्पष्ट होता है कि पूरे संस्कृत साहित्य जगत में श्रीरामचन्द्र और उनकी गाथा श्रीरामायण का कितना प्रभाव था ! श्रीरामायण ने संस्कृत, पाली इन सभी साहित्यों को प्रभावित किया है। उनमें संस्कृत साहित्य में सर्वाधिक रचनाएँ रामायण से प्रेरित तथा प्रभावित हैं। रामचन्द्र का आदर्श राजा के रूप में तथा आदर्श नायक के रूप में उनकी छवि अमिट और अमर है। अत: संस्कृत साहित्य की हर विधा में राम एक मुख्य एवं प्रिय पात्र हैं।

इतना ही नहीं, इस काव्य के कारण भारतीय साहित्यकारों के जनमानस आदर्श और चित्रणीय चरित्र श्रीरामचन्द्र ही हो गये। भारतीय संस्कृत साहित्य में सनातन धर्म और जैन धर्म के आचार्यों ने भी संस्कृत साहित्य की कृतियों में रामचन्द्र को नायक के रूप में दर्शाया है। संस्कृत साहित्य रामचन्द्रजी के चरित्र के विविध आयाम हमें दिखाता है। कवि कल्पना में वाल्मीकि के राम कभी परिवर्तित हुए हैं, तो कभी उनकी गुणावली को अत्यन्त सौष्ठवपूर्ण शैली में दिखाया गया है। संस्कृत साहित्य की रामकथाओं का आश्रय लेकर साहित्य का बृहद् इतिहास लिखा जा सकता है। संस्कृत रामायण से अनुप्रेरित अन्य भाषाओं के रामायण ने भी उस भाव को अपने साहित्य में आत्मसात् किया है। इसलिए परवर्ती रामायण भी लोकप्रिय हुये हैं। अब हम संस्कृत साहित्य की विविध विधाओं में कैसे रामचरित्र और रामायण का प्रभाव है, उसकी चर्चा करेंगे।

पद्यकाव्य में श्रीराम

संस्कृत में पद्यकाव्य में कालिदास का रघुवंश, भट्टि का रावणवध, प्रवरसेन का सेतुबन्ध, कुमारदास का जानकीहरण, क्षेमेन्द्र का रामायणमञ्जरी उल्लेखनीय है। यद्यपि इन सब काव्यों के चरित्र-चित्रण भिन्न हैं, कथा-वस्तु भी पृथक् है, परन्तु रामचन्द्रजी के चरित्र में प्रकाशित सत्य, धर्मपरायणता, न्यायशीलता प्रत्येक रचना में है। संस्कृत साहित्य के सर्वश्रेष्ठ कवि कालिदास के आदर्श श्रीवाल्मीकि हैं। कालिदास ने अपने काव्य में राम के पितृ-वचन के पालन की अद्भुत छवि चित्रित की है, जहाँ वे निर्विकार हैं। वाल्मीकि रामायण

में श्रीरामचन्द्रजी की उक्ति है –

न वनं गन्तुकामस्य त्यजतश्च वसुन्धराम्।
सर्वलोकातिगस्येव लक्ष्यते चित्तविक्रियाम्।।

अर्थात् राम जो वन जाने के लिये अपनी वसुन्धरा अयोध्या को छोड़ रहे थे, उनके मन में एक तपस्वी के समान कोई अशान्ति नहीं थी।

जीवन्मुक्त की तरह श्रीरामचन्द्र राज्य त्याग करते समय ही चित्तविकाररहित थे। यह कालिदास के काव्य में सुन्दर रूप से चित्रित हुआ है। कुमारदास के जानकीहरण में ही रामजी के सुन्दर वर्णन मिलते हैं। वाल्मीकि रामायण के **'धर्मो हि परमो लोके सत्यं धर्मे प्रतिष्ठितम्'** इस वाक्य का मूर्त स्वरूप वहाँ देखने को मिलता है। इसके साथ ही सत्य-पालन के सम्बन्ध में एक वाक्य वाल्मीकि रामायण में मिलता है –

सत्यमेकपदं ब्रह्म सत्ये धर्मः प्रतिष्ठितः।
सत्यमेवाक्षया वेदाः सत्येनावाप्यते परम्।।

यहाँ सत्य को ब्रह्म और धर्म कहा गया है। उस सत्य और धर्म के मूर्त प्रतीक श्रीरामचन्द्र हैं। सत्य और न्याय की यह प्रतिष्ठा और मर्यादा रामायण तथा रामजी का प्रथम तथा एकमात्र परिचय है, ऐसा कह सकते हैं। यह सत्य ही रामचरित्र को मर्यादा पुरुषोत्तम की अभिधा से भूषित करता है। सत्य और धर्म वाल्मीकि रामायण तथा परवर्ती रामकथाओं के हर चरित्र में विविध प्रकार से दिखाई देता है।

गद्यकाव्य में श्रीराम

गद्य और पद्य पद्यमिश्रित चम्पू काव्यों में रामचन्द्रजी के चरित्र का वर्णन मिलता है। गद्यकाव्यों में हर्षचरित इत्यादि गद्यकाव्यों में श्रीरामचन्द्र की उपमा तथा वाल्मीकि रामायण की तुलना बहुत बार हुई है। अनुपम होते हुए भी कवियों ने रामचरित्र को अपने नायकों का उपमान बनाया है। विदर्भ अधिपति भोज का रामायण चम्पू अत्यन्त प्रसिद्ध है। यहाँ रामचरित्र में कर्तव्य बोध, परिमितवक्ता का भाव इत्यादि गुणों का समावेश किया गया है। इसके अतिरिक्त और भी काव्य हैं, जो रामचन्द्र के सच्चरित्र वर्णन में तत्पर हैं। रामकवि का रामाभ्युदय, दिवाकर का अमोघराघव, अनन्ताचार्यजी का चम्पूराघव, देवराज का रामाभिषेक इन सबमें और इनके अतिरिक्त बहुत-से काव्यों में रामचरित वर्णित है। यद्यपि सभी चम्पू काव्यों में श्रीराम का चित्रण एक सदृश नहीं हुआ है, तथापि वे एक आदर्श नायक और राजा के रूप में अधिकांशतः चित्रित हुए हैं। वस्तुतः अधिकांश चम्पू काव्यों की रचना रामायणानुसार होने के पीछे कारण यही है कि रामचरित्र अत्यन्त लोकप्रिय था।

नाट्य में श्रीराम

संस्कृत नाट्यों में श्रीरामचन्द्र के उदात्त चरित्र को आश्रय कर अमर नाट्यकृतियाँ विरचित हुई हैं। भवभूति विरचित महावीरचरित, उत्तररामचरित संस्कृत साहित्य में श्रीरामचन्द्र के चरित्र के सभी पहलुओं को चित्रित किया गया है। उनके चरित्र की दिव्यता और पार्थिवता; दोनों पक्ष ही इस नाटक में प्रकाशित हुये हैं। इसके अलावा प्राचीन नाट्यकार भास का प्रतिमा और अभिषेक नाटक, शक्तिभद्र का आश्चर्यचूडामणि, मुरारि का अनर्घराघव, राजशेखर का बालरामायण, जयदेव का प्रसन्नराघव, दिङ्नाग का कुन्दमाला नाटक इत्यादि नाटकों में श्रीरामकथा का वर्णन है। कुन्दमाला में रामचरित्र की गम्भीरता, महावीर चरित में धर्मसंस्थापन के लिये श्रीरामजी की वीरता हमें राष्ट्र के लिए त्याग का पाठ पढ़ाती है। महावीरचरित में जैसे श्रीरामजी के वीर चरित्र का चित्रण हुआ है, वैसे ही उत्तररामचरित में भवभूति ने रघुपति के कारुण्य, दया और प्रेम का वर्णन किया है। श्रीराम जो मर्यादा पुरुषोत्तम हैं, वे उत्तररामचरित में एक धीरोदात्त नायक की श्रेणी में आते हैं। धीरोदात्त नायक अपनी धीरता और उदात्त गम्भीरता के लिए संस्कृत काव्यशास्त्र में परिज्ञात है। यह गुणावली ही इस उत्तररामचरित नाटक में प्रकाशित हुई है। वाल्मीकि रामायण में श्रीराम कहते हैं –

न ह्यतो धर्माचरणं किञ्चिदस्ति महत्तरम।
यथा पितरि शुश्रूषा तस्या वा वचनक्रिया।।

अर्थात् पिता की सेवा और उनके वचन का पालन; इस से बड़ा कोई धर्म नहीं है।

यह उत्तररामचरितादि नाटकों में स्पष्ट होता है। इन नाटकों में रामजी का चरित्र हमें सत्य, प्रेम, क्षमा, दान, कर्तव्यनिष्ठा एवं न्यायपरायणता की शिक्षा देता है, जो आज इस युग में भारत राष्ट्र के निर्माण में सहायता करेंगे। अतः राष्ट्र-पुरुष विग्रहवान धर्म रामचन्द्रजी के मन्दिर पुनः स्थापित होने के साथ-साथ इन गुणों की अभिवृद्धि हमारे चरित्र में हो, यही कामना करते हैं। ○○○

श्रीरामकृष्ण-गीता (३३)

स्वामी पूर्णानन्द, बेलूड़ मठ

(स्वामी पूर्णानन्द जी रामकृष्ण संघ के वरिष्ठ संन्यासी हैं। उन्होंने २९ वर्ष पूर्व में इस पावन श्रीरामकृष्ण-गीता ग्रन्थ का शुभारम्भ किया था। इसे सुनकर रामकृष्ण संघ के पूज्य वरिष्ठ संन्यासियों ने इसकी प्रशंसा की है। विवेक-ज्योति के पाठकों के लिए बंगला भाषा से इसका हिन्दी अनुवाद रामकृष्ण मिशन आश्रम, नारायणपुर के स्वामी कृष्णामृतानन्द जी ने की है। – सं.)

भूयोऽधितोऽपि शास्त्रे किं स्यात् काम-कांचने सदा।
ज्ञानमासक्तबुद्धित्वादाप्तं नार्हति किञ्चन।।६।।

– वैसे ही बहुत से शास्त्र-अध्ययन करने से क्या होगा? उन लोगों का मन सर्वदा काम-कांचन में आसक्त रहने के कारण वे ज्ञान प्राप्ति नहीं कर सकते।

ग्रन्थो न ग्रन्थिरेखासौ बन्धनं हि समीक्ष्यते।
दम्भस्याहंकृतेर्ग्रन्थिः केवलं वर्द्धते सदा।।७।।

– ग्रन्थ नहीं, वह ग्रन्थि-गाँठ है। इससे अहंकार की गाँठ और बढ़ जाती है।

यतः सम्यग् विवेकेन वैराग्यसहितेन च।
पुस्तकं यदि नाधीतं बन्धस्तथोपजायते।।८।।

– यदि सम्यक् विवेक और वैराग्य के साथ ग्रन्थ का अध्ययन न किया जाये, तो वह बन्धन का सृजन करता है।

जनैकस्तार्किकः कश्चित् पुमान् मयोक्त एकदा।
वाक्येनैकेन शक्नोष्यवगन्तुं चेदतः परम।।९।।
तर्ह्येव त्वमिहागच्छ मत्सकाशं हि तत्परः।
बहुभिर्युक्ति तर्कैश्चेद् गन्तासि गच्छ केशवम्।।१०।।

– एक बार किसी तार्किक को मैंने कहा था – यदि तुम एक बार में मेरी बात समझ सको, तभी यहाँ मेरे पास आना। यदि बहुत तर्क-वितर्क करना चाहो, तो केशव के पास चले जाना।

घटः शब्दायते यावद् घर्घरं पूर्यते जलैः।
यथा हि शून्यगर्भोऽयं निःशब्दः पूरिते सति।।११।।

– जैसे खाली घड़ा में जल भरने से वह भक्-भक् आवाज करता है, किन्तु वह घड़ा पूण हो जाने पर कोई आवाज नहीं होती है। **(क्रमशः)**

कविता

राम-भजो दिन रैन

भानुदत्त त्रिपाठी 'मधुरेश'

अहंकार के गाँव में कहीं नहीं सुख-चैन ।
यदि चाहो आराम, तो राम-भजो दिन रैन ।।
वह जीवन ही धन्य है, जिससे हो परमार्थ ।
प्रेम-भक्ति भगवान की, यह सच्चा स्वार्थ ।।
साधु होना कठिन है, साल साधु का वेष।
जो मन को भी साध ले, सोई साधु विशेष ।।
जो अनेक है एक में औ अनेक में एक ।
परम पुरुष सोई सदा, करके देख विवेक ।।
करो अकर्ताभाव से जग में सारे काम ।
अहंकार तज, प्रेम से जपो राम का नाम ।।
जो रहता है रात-दिन अहंकार में चूर ।
जग में उसके दोष-दुख कभी न होंगे दूर।।
सावधान, मन ! मत गहो मत-मजहब की राह।
रहता इनके मूल में अहंकार का दाह ।।
मानवता नर लोक का सदा सनातन धर्म ।
सत्य-प्रेम-सद्भाव ही जिसका शाश्वत मर्म।।
होती माया-भक्ति जो, वह है जग-आसक्ति ।
मायापति की भक्ति ही केवल सच्ची भक्ति ।।
परम प्रेम-धन-रतन-सा रतन न कोई और ।
प्रेम-रतन-धन ही सदा सभी सुखों का ठौर ।।
सत्य-न्याय-सेवा जहाँ करुणा का उद्भास ।
मानवता का लोक में होता वहीं विकास ।।
धरती ही धरती सदा सिर पर सबका भार ।
तो धरती पर क्यों करे मानव अत्याचार ।।
जब-तक जीवन से नहीं मिट जाते सब पाप।
तब तक मिट सकते नहीं ताप-शाप-संताप।।

रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन, यादाद्री भुवनगिरि मठ : आन्तरिक जीवन का स्वर्ग

स्वामी सत्येशानन्द, सह-महासचिव, बेलूड़ मठ, हावड़ा

हैदराबाद के समीपस्थ यादाद्री भुवनगिरी का यह आश्रम रामकृष्ण संघ के तेहरवें संघाध्यक्ष स्वामी रंगनाथानन्द जी महाराज की संकल्पना से साकार हुआ है। यह आश्रम उनकी पावन स्मृति का प्रतीक है। यह आश्रम स्वामी रंगनाथानन्द जी की ओर से आध्यात्मिक साधकों को सप्रेम उपहार है। वृक्ष-लताओं से आच्छादित आश्रम के परिवेश में कदम रखते ही मन शान्त हो जाता है। आधुनिक जगत् में जीवन-संध्या की ओर झुके हुए साधक, आन्तरिक शान्ति से लाभान्वित होकर अपनी आध्यात्मिक उन्नति करें, इस उदात्त प्रयोजन से महाराजजी ने इस आश्रम की स्थापना की है। इस आश्रम को देखते ही रामकृष्ण संघ के हिमालय में स्थित मायावती आश्रम की स्मृति जागृत होती है। स्वामी विवेकानन्द का सपना था कि हिमालय में रामकृष्ण संघ का आश्रम होना चाहिए। स्वामीजी के अंग्रेज शिष्य सेवियर दम्पती ने यह सपना पूरा किया। उसी प्रकार निष्ठावान आध्यात्मिक साधकों के लिए विशेषत: वृद्ध साधकों के लिए एक साधना कुटीर बनाने का स्वामी रंगनाथानन्द जी का सपना कुछ समर्पित भक्तों के योगदान से पूर्ण हुआ।

सभी जानते हैं कि परम पूज्य महाराज 'अमर भारत' संकल्पना के आध्यात्मिक राजदूत थे। उन्होंने वेदान्त तथा श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द के वैश्विक संदेशों का अत्यन्त उत्साह और उमंग के साथ भारत तथा विदेशों में प्रचार किया। इस के साथ ही उनके करुणामय, उदार हृदय में दीन-दुर्बल और पददलित लोगों के दुख-कष्टों के प्रति संवेदना थी। समाज के दुर्बल लोगों और महिलाओं के कल्याणार्थ वे अत्यन्त व्याकुल थे। उनके उत्थान के लिए वे अनेक प्रकार की सहायता करते थे। अनेक देशों के लोगों के सामाजिक और आध्यात्मिक कल्याण में उनका बहुत बड़ा योगदान है। उनके उदात्त चरित्र और प्रेरक व्याख्यान से देश-विदेश के लोगों को उच्च आध्यात्मिक दिशा प्राप्त हुई और उनका जीवन परिवर्तित हुआ। उनके व्यक्तित्व से प्रेम, पवित्रता और सकारात्मकता प्रवाहित होती थी। जो साधक उच्च

आध्यात्मिक आदर्शों के प्रति समर्पित जीवन जीना चाहते हैं, उन साधकों की आन्तरिक उन्नति के लिये यह यादाद्री आश्रम इस महापुरुष के आन्तरिक प्रेम का प्रतीक है।

१९८७ की बात है। पूज्य महाराज तब हैदराबाद मठ के अध्यक्ष थे। एक बार वे कुछ भक्तों के साथ हैदराबाद से ३५ कि.मी. दूर किसरागुट्टा पहाड़ियों में स्थित प्राचीन शिव मन्दिर में दर्शनार्थ गये थे।

पाँचवीं से सातवीं शताब्दी तक तेलंगाना राज्य के शासक विष्णुकुंदीन राजाओं ने इस प्राचीन मन्दिर का निर्माण किया। लोगों की ऐसी श्रद्धा है कि रामायणकालीन अति प्राचीन मन्दिर जहाँ था, उसी स्थान पर आज यह मन्दिर खड़ा है। पौराणिक कथा के अनुसार श्रीरामजी ने यहाँ स्वयं शिवलिंग स्थापना कर पूजा की। इसलिए यह रामलिंगेश्वर नाम से जाना जाता है। इस कथा के अनुसार भगवान श्रीराम ने हनुमानजी को हिमालय से विशिष्ट प्रकार का शिवलिंग लाने के लिए कहा था। हनुमानजी उस विशिष्ट शिवलिंग को पहचान न सके। अत: उन्होंने कई प्रकार के सैकड़ों शिवलिंग लाए। पूजा के लिए एक ही शिवलिंग की आवश्यकता थी। अत: शेष शिवलिंगों को चोटियों पर तथा आसपास के जंगलों में बिखेर दिया गया। हनुमानजी के प्रति श्रद्धा के कारण इस गाँव को 'केसरीसुत' नाम से पहचाना जाता है। इसी का अपभ्रंश 'किसरा' हुआ।

इस प्राचीन मन्दिर में प्रवेश करते ही महाराज को इस पावन स्थान पर आध्यात्मिक स्पन्दनों की अनुभूति हुई।

उन्होंने भक्तों से कहा कि यह स्थान सनातन ऋषियों की तपश्चर्या से तपोभूमि बना है। उन्होंने भक्तों को देवस्थान के समीप थोड़ी भूमि लेकर वहाँ आश्रम बनाने का सुझाव दिया।

महाराज के शब्दों से प्रेरित होकर कुछ भक्तों ने 'श्रीरामकृष्ण वानप्रस्थ आश्रम' नामक विश्वस्त मंडल की स्थापना की और उपयुक्त स्थान खोजने लगे। बहुत खोजने के बाद मन्दिर से सात किलोमीटर दूर पेड्डापर्वतपुर ग्राम में थोड़ी भूमि मिली। श्री.जी. हरिश्चन्द्र रेड्डी ने इस भूमि की पूरी राशि प्रदान की। आश्रम का नक्शा बनाया गया। ११ अगस्त, १९९० को ५०० भक्तों की उपस्थिति में स्वामी रंगनाथानन्द जी महाराज के करकमलों से आश्रम का शिलान्यास हुआ। जनवरी, १९९१ में रामकृष्ण मठ, चेन्नई के तत्कालीन अध्यक्ष स्वामी स्मरणानन्द जी महाराज ने आश्रम का भूमिपूजन किया।

एक बार अपनी एक यात्रा के समय स्वामी रंगनाथानन्द जी महाराज जी ने पहाड़ की एक छोटी चोटी पर बैठकर ध्यान किया। तदन्तर उन्होंने भक्तों से उस चोटी पर मन्दिर बनाने के लिए कहा। आज उसी स्थान पर श्रीरामकृष्ण देव का मन्दिर स्थित है।

८ नवम्बर, १९९१ को रामकृष्ण मठ और मिशन के तत्कालीन परम उपाध्यक्ष और हैदराबाद मठ के अध्यक्ष स्वामी रंगनाथानन्द जी महाराज ने इस आश्रम के प्रथम चरण का उद्घाटन किया, श्रीरामकृष्ण मन्दिर तथा श्रीसारदा देवी ग्रामीण चिकित्सालय का शिलान्यास किया। बाद में श्रीरामकृष्ण संघ के वरिष्ठ संन्यासी श्रद्धेय स्वामी स्मरणानन्द जी, स्वामी गौतमानन्द जी, स्वामी गिरिशानन्द जी, स्वामी सुवीरानन्द जी तथा अन्य महाराज लोगों के चरण-कमलों से यह स्थान पावन हुआ।

लगभग २५ वर्ष वृद्धाश्रम को सुचारू रूप से चलाने के बाद २०१८ में विश्वस्त मंडल ने इस आश्रम को रामकृष्ण मिशन को हस्तान्तरित किया। २०१८ से २०२२ तक यह आश्रम रामकृष्ण मठ, हैदराबाद का उपकेन्द्र था। जून २०२२ में रामकृष्ण संघ, बेलड़ मठ ने इसे स्वतन्त्र शाखा के रूप में मान्यता प्रदान की।

आज के सामाजिक परिवर्तनों का विचार करते हुए रामकृष्ण मिशन के पदाधिकारियों ने इस आश्रम को साधकों की आध्यात्मिक आवश्यकता पूर्ण करने हेतु समर्पित करने का निर्णय लिया। वर्तमान में आश्रम के साधना कुटीरों के नवीनीकरण का कार्य प्रारम्भ है। आश्रम के पवित्र वातावरण में एकान्तवास में कुछ दिन रहने के इच्छुक साधकों के लिए सुविधाएँ की जा रही हैं। श्रीरामकृष्ण हमेशा कहते थे कि साधकों को मन में, कोने में और एकान्त वन में साधना करनी चाहिए। साधना की दृष्टि से अनुकूल आश्रम के परिसर में घना जंगल, सरोवर, स्वतन्त्र साधना कुटी और पावन मन्दिर है।

गृहस्थ भक्तों के बारे में परम पूज्य स्वामी रंगनाथानन्द जी महाराज हमेशा कहते थे, ''आज के युग में श्रीरामकृष्ण, श्रीसारदा देवी और स्वामी विवेकानन्द; इन दिव्यत्रयी ने गृहस्थ भक्तों को जीवन में उनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका का अनुभव तथा सम्मान प्राप्त कराने के लिए इस धरातल पर जन्म लिया है। श्रीरामकृष्ण स्वयं गृहस्थ थे। श्रीसारदा देवी गृहस्थ थीं। दोनों ने ही गृहस्थ धर्म का आदर्श स्थापित किया है। अब तक गृहस्थ अपने आप को आध्यात्मिक दृष्टि से अनुन्नत समझते थे। मैंने भारतभर भ्रमण किया। सब जगह लोग यही कहते थे कि हम तो गृहस्थ हैं, क्या हम उच्च आध्यात्मिक ध्येय प्राप्त कर सकते हैं? गृहस्थ इस प्रकार अपने आप को न्यून समझते हैं। यह भावना गलत है। यह शास्त्रविरोधी है तथा देश की प्रगति में बाधक है। गृहस्थों को आत्मविश्वास, प्रतिष्ठा, सामर्थ्य प्रदान करने के लिए अवतार पृथ्वी पर आते हैं। अवतार भी गृहस्थ आश्रम में ही जन्म लेते हैं। सम्पूर्ण जगत और समाज गृहस्थ आश्रम पर निर्भर है।''

गृहस्थ ही समाज को अन्न और शिक्षा प्रदान करते हैं। गृहस्थ बहुत काम करते हैं और उन्हें अपने आप को कम नहीं आँकना चाहिए। समाज में अपने योगदान के प्रति उन्हें स्वाभिमान होना चाहिए। समाज गृहस्थाश्रम से ही चलता है।

यादाद्री भुवनगिरि आश्रम में गृहस्थ, अविवाहित, युवक, वरिष्ठ नागरिक सभी ध्यान-धारणा कर अपने अन्त: स्थल में डूब कर सच्ची शान्ति और संतोष का अनुभव ले सकते हैं। संक्षिप्त यह आश्रम स्वामी रंगनाथानन्द जी महाराज का आध्यात्मिक साधकों के कल्याण हेतु आन्तरिक प्रेम और आस्था का मूर्त रूप है। जो भक्त इस परिवेश का लाभ उठाना चाहते हैं, वे आश्रम के सचिव महाराज जी से ७९०१६९६८०१ इस दूरभाष क्रमांक पर अथवा yadadri.bhuvangiri@rkmm.org पर सम्पर्क कर सकते हैं। ○○○

श्रीरामचन्द्र जयन्ती विशेष

गाँधी के श्रीराम

डॉ. रंजना शर्मा, रायपुर

राम-नाम का प्रभाव महात्मा गाँधी के जीवन में बचपन से था। अपनी आत्मकथा में वह लिखते हैं कि बचपन में जब भी उन्हें भय लगता था, तब वह भय से मुक्त होने के लिए राम-नाम का जप करते थे। राम-नाम का मंत्र ही था, जो उन्हें निर्भय बनाता था। उनकी खानदानी आया रंभा थीं, जिन्होंने गाँधीजी को समझाया कि जब भी डर लगे, तो सबसे पहले यह स्वीकार करो कि तुम्हें डर लग रहा है। उसके बाद उस डर से भागो नहीं, बल्कि उसका सामना करो। राम-नाम के विश्वास के साथ राम-नाम का जप करो। राम-नाम का जप तुम्हारे डर को दूर कर देगा। गाँधीजी के मन में रंभा के प्रति आदर का भाव था। उन्होंने उनकी बात मानी और जब भी डर लगता, तो विश्वास के साथ राम नाम का जप करने लगते और भय पर विजय प्राप्त कर निर्भय हो जाते। उन्होंने लिखा है कि मंत्र व्यक्ति के जीवन का सहारा बन जाता है और व्यक्ति को हर परीक्षा में, कठिन समय में सहज रूप से सहायता करता है। वे यह मानते हैं कि मंत्र की पुनरावृत्ति हर बार नये अर्थ में हमारे सामने आती है और हर बार वह हमें ईश्वर के और अधिक निकट ले जाती है। राम-नाम का मंत्र वह आध्यात्मिक सूत्र है, जो व्यक्तित्व के नकारात्मक भाव को सकारात्मक भाव में बदल देता है। वह क्रोध को करुणा में, बुरे भाव को सद्भाव में और घृणा को प्रेम में परिवर्तित कर देता है। राम-नाम का मंत्र मस्तिष्क को शान्त बना देता है, समस्त वैचारिक विरोधाभास को समाप्त कर चेतना के गहन स्तर पर पहुँचाकर जीवन को शान्तमय व आनन्दमय बना देता है। राम नाम का मंत्र महात्मा गाँधीजी के लिए अक्षय आनन्द का स्त्रोत था। वे प्रतिदिन मीलों टहलते समय भी इसका जप करते थे। इस राम-नाम मंत्र साधना ने उन्हें भय और क्रोध पर विजय प्राप्त करना सिखा दिया था। इसका परिणाम यह हुआ कि कोई भी अशान्ति, हिंसा उनके मन की शान्ति व निडरता को भंग नहीं कर सकती थी। गाँधीजी पूरी तरह राम पर आश्रित हो गये थे। गाँधीजी कहते हैं, मैंने उस अन्तर्यामी को देखा नहीं है और न उसे जाना है। मैंने संसार का ईश्वर में जो विश्वास है, उसी को अपनाया है। चूँकि मेरी श्रद्धा अमिट है, इसलिए उस श्रद्धा को मैं अनुभव के समान समझता हूँ। ऐसे सर्वव्यापी सत्यनारायण प्रभु का साक्षात्कार करने के लिए मनुष्य के मन में छोटे-से-छोटे प्राणी के प्रति अपने ही जैसा प्रेम होना चाहिए। जो मनुष्य ऐसा करता है, वह जीवन के किसी क्षेत्र से बाहर नहीं रह सकता, हर क्षेत्र में उसे हर जगह सत्यनारायण प्रभु के ही दर्शन होंगे। गाँधीजी कहते हैं, ईश्वर मेरी रग-रग में समाया हुआ है। जब मैं सत्य को ईश्वर के रूप में ग्रहण करता हूँ, तो यह मंत्र 'सत्य ही ईश्वर है' मुझे ईश्वर को मानो अपनी आँखों के सामने प्रत्यक्ष देखने की क्षमता प्रदान करता है। ईश्वर का

अभय वचन है, जो प्रयत्न करता है, उसका कभी नाश नहीं होता, गाँधीजी की इसमें अटूट श्रद्धा थी। वे यह मानते थे कि इसका पालन करते हुए एक दिन ऐसा अवश्य आयेगा, जब इंद्रियों पर उनका पूरा नियन्त्रण हो जायेगा और तब उन्हें ईश्वर-प्रकाश का दर्शन होगा। गाँधीजी कहते हैं, मानव-जाति की सेवा के द्वारा ईश्वर-दर्शन का प्रयत्न कर रहे हैं, क्योंकि वे यह मानते थे कि ईश्वर न तो ऊपर स्वर्ग में है और न ही किसी पाताल में, ईश्वर सबके हृदय में विराजमान है। गाँधीजी यह मानते हैं कि ईश्वर-दर्शन व मोक्ष का मार्ग ही मानव जाति की सेवा है।

गाँधीजी यह कहते हैं कि उन्हें अनुभव होता है कि विश्व में व्यवस्था है, हरेक प्राणी और प्रत्येक वस्तु पर शासन करनेवाला एक अटल नियम है और यह कोई अन्धा नियम नहीं है, क्योंकि सजीव प्राणियों के आचरण को नियमित करनेवाला कोई नियम अन्धा नहीं हो सकता। जगदीश चन्द्र बसु की खोज ने यह सिद्ध किया कि जड़ पदार्थों में भी जीवन है। गाँधीजी कहते हैं, सब प्राणियों का शासन करनेवाला नियम ही ईश्वर है। नियम और नियामक एक ही है। जिस तरह किसी सांसारिक राज्य को स्वीकार कर लेने से उसके अधीन जीवन आसान हो जाता है, उसी प्रकार दैवीय सत्ता को नम्र होकर चुपचाप स्वीकार कर लेने से जीवन की यात्रा सरल हो जाती है। संसार के सारे परिवर्तन के पीछे ऐसी कोई चेतन शक्ति है, जो बदलती नहीं है, जो सबको धारण किये हुए है, जो सर्जन करती है, संहार करती है और फिर नया सर्जन करती है। यह जीवनदायी शक्ति ईश्वर है। चूँकि इन्द्रियों द्वारा दिखायी देनेवाली कोई भी वस्तु न स्थायी है और न हो सकती है, इसलिए एकमात्र ईश्वर का ही अस्तित्व है। यह ईश्वर शक्ति, शान्ति और कल्याणकारी है। ईश्वर जीव है, सत्य है और प्रकाश है, वही प्रेम है, वही परम मंगल कल्याणकारी है।

गाँधीजी ऐसा मानते हैं कि जो ईश्वर केवल बुद्धि को संतोष देता है, वह ईश्वर नहीं है। ईश्वर तभी ईश्वर है, जब वह हृदय पर शासन करता हो, जो भक्त के छोटे-से-छोटे काम में प्रगट होता हो, जो इन्द्रिय-ज्ञान से परे अतीन्द्रिय ज्ञान द्वारा ज्ञात होता है, जिसका प्रमाण बाहरी साक्ष्यों से नहीं मिलता। जिन लोगों को ईश्वर का साक्षात्कार होता है, उनके स्वभाव व आचरण से उनमें परिवर्तन से पता चल जाता है कि उन्हें ईश्वर साक्षात्कार हो गया है। सभी महान ऋषि, पैगम्बर में यह देखा जा सकता है।

गाँधीजी कहते हैं, अटल श्रद्धा के द्वारा ईश्वर का साक्षात्कार हृदय में हो सकता है। इस अटल श्रद्धा को अपने अंदर विकसित करने का सबसे सरल व सुरक्षित मार्ग संसार के नैतिक शासन में है। इसलिए नैतिक कानून में सत्य और प्रेम के विपरीत सब बातों का सर्वथा त्याग करने का स्पष्ट संकल्प करके इस श्रद्धा को अपने अंदर उत्पन्न किया जा सकता है। गाँधीजी कहते हैं, मेरी दृष्टि में ईश्वर सत्य और प्रेम है, नीति और सदाचार है, अभय है। ईश्वर प्रकाश व जीवन का स्त्रोत है, सबसे ऊपर, सबसे परे है, परमात्मा है, वह वाणी व बुद्धि से परे है। वह शुद्धतम सार है, सत् स्वरूप है। वह हमारे साथ वही व्यवहार करता है, जो हम दूसरों, जीव-जन्तु, पशु-पक्षी, मनुष्य के साथ करते हैं। किन्तु ईश्वर क्षमाशील भी है, वह हमें पश्चात्ताप का अवसर भी देता है। वह लोकतन्त्रवादी है, वह हमें बुराई और भलाई के बीच चुनाव करने की स्वतन्त्रता भी देता है। यह ईश्वर शक्ति जड़ पदार्थ व सभी चेतन प्राणियों में है। इस ईश्वर शक्ति को गाँधीजी प्रेम शक्ति मानते हैं। प्रेमपूर्ण व्यवहार में ही समस्त ईश्वर-ज्ञान समाया हुआ है। जहाँ प्रेम है, वहाँ जीवन है, वहाँ ईश्वर है। ईश्वर सत्, चित्, आनन्द है। ईश्वर की सच्ची भक्ति सत्य की आराधना है।

'हरिजन' के १६.०२.३४ के अंक में गाँधीजी लिखते हैं, मैं शब्दश: मानता हूँ कि उसकी इच्छा के बिना पत्ता भी नहीं हिलता। एक-एक साँस जो मैं लेता हूँ, उसकी कृपा पर निर्भर है। ईश्वर और उसका कानून एक ही है। वह कानून ही ईश्वर है। उसका जो भी गुण बताया जाता है, वह केवल गुण नहीं है, वह स्वयं ही गुण रूप है। वह सत्य है, प्रेम है, कानून है और हजार अन्य वस्तुएँ जो मनुष्य की बुद्धि सोच सकती है, वह है। वह सर्वशक्तिमान और सर्वज्ञ है। वह एक ही समय में बिना किसी प्रयास के भूत, वर्तमान और भविष्य तीनों को जानता है।

गाँधीजी कहते हैं, मैं ईश्वर को कोई मनुष्य नहीं मानता। मेरे लिए सत्य ही ईश्वर है। ईश्वर के अनन्त नामों में एक नाम दरिद्रनारायण है, जिसका अर्थ है गरीबों के हृदय में प्रगट होनेवाला ईश्वर। लाखों हृदय में निवास करनेवाले ईश्वर की पूजा इन लाखों लोगों (दरिद्रनारायण) की सेवा करना

ही है। मानव सेवा ही सच्ची ईश्वर सेवा है। मैं उस सत्य की, जो ईश्वर है, जो लाखों लोगों के हृदय में विराजमान है, उसकी पूजा सेवा के द्वारा करता हूँ। गाँधीजी के लिये राम, राम के गुण थे। राम के गुण ही ईश्वर है, इसलिए वे सत्य को ईश्वर मानते हैं। वे 'हरिजन' के ८.७.३३ के अंक में कहते हैं, मेरे लिए ईश्वर की, अन्त:करण की या सत्य की आवाज या जिसे मैं अन्तर्नाद कहता हूँ, सब एक ही अर्थ के सूचक शब्द हैं। वे कहते हैं, मैंने ईश्वर की आकृति नहीं देखी, मैंने ईश्वर को हमेशा निराकार माना। यह सत्य है, जो असीमित अनन्त होगा, वह सीमित आकार में कैसे हो सकता है? किन्तु गाँधीजी कहते हैं, उन्होंने असंदिग्ध रूप में ईश्वर की आवाज सुनी, जैसे कोई मनुष्य प्रत्यक्ष में कह रहा हो। इसे वे अन्तरात्मा की आवाज कहते हैं। इस अन्तरात्मा की आवाज से (ईश्वर की आवाज से) चित्त की व्याकुलता समाप्त हो जाती है और चित्त शान्त हो जाता है।

मन्दिर या मूर्तिपूजा का समर्थन करते हुए गाँधीजी कहते हैं कि हम मानव परिवार के सब मनुष्य दार्शनिक नहीं हैं। किसी न किसी प्रकार हमें कोई ऐसी वस्तु चाहिए, जिसे हम छू सकें, जिसे हम देख सकें, जिसके सामने हम घुटने टेक सकें। इसका कोई महत्त्व नहीं कि वह चीज कोई पुस्तक है या पत्थर का रिक्त भवन है या पत्थर का ऐसा भवन है, जिसमें अनेक मूर्तियाँ निवास करती हैं।

गाँधीजी कहते हैं, विश्वास करो और इस अन्तर की आवाज को सुनने का प्रयास करो। इस आवाज को चाहे जो नाम दो, लेकिन वास्तव में यह ईश्वर ही है। इस विश्व में ईश्वर के सिवा और कुछ है ही नहीं। जब हम अपने को शून्य कर देते हैं, तब ईश्वर मार्गदर्शन करता है। गाँधीजी कहते हैं, ईश्वर की असंख्य व्याख्याएँ हैं, उसकी अगणित विभूतियाँ हैं। ये विभूतियाँ मुझे आश्चर्यचकित और स्तब्ध भी करती हैं। लेकिन मैं ईश्वर की पूजा सत्य के रूप में ही करता हूँ। ईश्वर में विश्वास बुद्धि से परे श्रद्धा के द्वारा होता है। इन्द्रियों के द्वारा ईश्वर का ज्ञान नहीं हो सकता, क्योंकि वह इन्द्रियों से परे है। गाँधीजी मानते हैं कि ईश्वर हमारे सामने शरीर धारण करके नहीं, बल्कि कार्य रूप में आता है। मनुष्य का अन्तिम लक्ष्य ईश्वर-साक्षात्कार है। ईश्वर को पाने का एकमात्र उपाय यह है कि उसे उसकी सृष्टि में देखा जाये, उसके साथ एकता अनुभव किया जाय और यह सबकी सेवा से ही सम्भव है। मैं सम्पूर्ण का एक अविभाज्य अंग हूँ और मैं उसे अर्थात् ईश्वर को शेष मानवता से पृथक् नहीं मानता। बचपन में जब भी डर लगता था, खतरा मालूम होता था, राम-नाम से मैं चिपट जाता था। राम-नाम से ही मैं अपने डर पर, भय पर विजय प्राप्त कर पाता था। बाद में इस राम-नाम ने ही गाँधीजी को निर्भयता प्रदान की।

गाँधीजी कहते हैं 'निर्बल के बल राम'। आश्रम में प्रतिवर्ष राम का जन्मदिन मनाया जाता था, जिससे लोग आत्मनियन्त्रण का अभ्यास कर सकें, बच्चे रामायण पढ़कर कुछ सीख सकें और खुशी मना सकें। हर देहधारी व्यक्ति भगवान को भी देह रूप में देखता है, क्योंकि उसकी कल्पना की सीमा ही यहीं तक है। वे कहते हैं, इस बात को अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि कोई ऐतिहासिक व्यक्ति भगवान का अवतार था या किसी ऐतिहासिक व्यक्ति के महान कृत्यों से प्रभावित होकर किसी को भगवान का अवतार मान लिया गया। वे कहते हैं, कई भक्त वाल्मीकि या तुलसी के राम में उसी भगवान को देखते हैं, किन्तु हम किसी अन्य की कल्पना के राम की पूजा नहीं करते, हमारे अपने राम हैं 'निर्बल के बल राम' सत्य ही ईश्वर है।

अपने निबन्ध मोक्षदाता राम में गाँधीजी कहते हैं, भारत का लोक तुलसीदास के राम और महर्षि वाल्मीकि के राम को मानता है, जो भगवान विष्णु के अवतार हैं, वे किसी की कल्पना नहीं, बल्कि सत्य हैं। तुलसी और वाल्मीकि के राम ही हैं, जो अंसख्यों को अन्याय का डटकर संघर्ष करने का साहस देते हैं। राम मोक्षदाता होने के साथ-साथ बलदाता भी हैं, यह भारत का जनमानस भी स्वीकार करता है, तभी लोग कहते हैं 'सबके राजा राम' 'निर्बल के बल राम''।

राम-नाम में अटूट आस्था के कारण महात्मा गाँधी ने स्वराज्य के रूप में रामराज्य को स्वीकार किया था। न्याय आधारित समाज की अवधारणा राम राज्य द्वारा ही पूरी हो सकती है। महात्मा गाँधी राम-नाम पर, सत्य पर आधारित लोकतन्त्र चाहते थे, जो पारदर्शी व उत्तरदायित्व से युक्त हो। गाँधीजी के जीवन की अमोध शक्ति राम नाम है। बचपन से लेकर अन्तिम समय तक उनके मुँह पर राम नाम ही रहा। राम नाम को वे कभी नहीं भूले। उन्होंने कहा कि वे अपनी अच्छी मृत्यु उसी को मानेंगे, जब अन्तिम समय में उनके मुँह से राम-नाम निकले। यह गाँधीजी की राम प्रभु के प्रति

अपार श्रद्धा और विश्वास ही था कि जब उन्हें गोली लगी, तो अन्तिम शब्द 'हे राम' ही था। उन्होंने न केवल राम-नाम को माना, वरन् राम के गुण को अपने जीवन में आत्मसात् किया सत्य, प्रेम, क्षमा के रूप में अपनाकर।

गाँधीजी ने राम के सगुण-निर्गुण दोनों रूपों को स्वीकार किया। उन्होंने माना कि हनुमान में जो अपार शक्ति थी, जिससे उन्होंने पर्वत उठाया, समुद्र लांघा, यह इसलिए क्योंकि उनके हृदय में राम विराजमान थे। वे केवल होठों से राम नाम नहीं जपते थे, बल्कि हर क्षण राम उनके हृदय में रहते थे। जो राम सबके हृदय में निवास करते हैं, उनकी देह नहीं हो सकती, वे देह भाव में सीमित नहीं हो सकते। गाँधीजी के राम अद्भुत हैं, वे सुबह उठने से लेकर रात सोने तक दर्द का निवारण करते हैं, समस्त बाधा दूर करते हैं। गाँधीजी के अनुसार राम शाश्वत, अजन्मा और अद्वितीय हैं। वे जगत के स्वामी हैं। गाँधीजी राम के इसी स्वरूप की आराधना करते थे। वे केवल उसी के आकांक्षी थे और चाहते थे कि सब लोग वैसे बने। उनके अनुसार राम सबके लिए समान हैं। महात्मा गाँधी की अटूट आस्था राम में थी, इसलिए उन्होंने अपने आदर्श समाज का नाम रामराज्य रखा। रामराज्य का अर्थ ईश्वर का राज्य है अर्थात् धर्म और पुण्य-काम में निरन्तर लगा रहनेवाला राज्य राम आदर्श पुरुषोत्तम हैं। अत: रामराज्य आदर्श सर्वोत्तम राज्य है। रामराज्य का अर्थ पूर्ण सुशासन और पारदर्शिता है। गाँधीजी के लिये राम और रहीम एक हैं, क्योंकि सत्य और धार्मिकता के अलावा वे किसी अन्य ईश्वर को स्वीकार नहीं करते। हिन्दू संस्कृति में राम द्वारा किया गया शासन आदर्श शासन माना जाता है। गाँधीजी भी इसी आदर्श राज्य की स्थापना लोकतन्त्र के माध्यम से भारत में स्थापित करना चाहते थे। वे मानते थे कि शुद्ध नैतिक आधार पर ही इसकी स्थापना हो सकती है। ऐसे समाज में सद्गुण, नैतिकता और न्याय मुख्य आदर्श होते हैं। यह धर्मनिष्ठ, कर्त्तव्यनिष्ठ राज्य है, जिसमें सम्पन्न व निर्धन दोनों के समान अधिकार होते हैं। रामराज्य से अभिप्राय ईश्वर राज्य से है, जिसमें सत्य व धार्मिकता के एक ईश्वर को स्वीकार किया जाता है, जिसमें राम और रहीम एक हैं।

गाँधीजी के जीवन की भय से अभय तक की यात्रा राम नाम से ही, राम के प्रति उनके गुणों के प्रति असीम अटूट आस्था से ही पूरी होती है। अन्तिम समय में भी उनकी जिह्वा पर राम-नाम ही था। 'हे राम' कहते हुए ही पार्थिव शरीर को उन्होंने छोड़ा था। ऐसा सम्भव केवल तभी हो पाता है, जब राम के गुणों को आत्मसात् करते हुए उनके प्रति गहरी निष्ठा, आस्था व श्रद्धा हो। राम-नाम का जप करते हुए उन्होंने भय पर विजय प्राप्त किया, राम-नाम के प्रति आस्था ने सत्य को उनके मन में ईश्वर के रूप में स्थापित किया तथा आदर्श राज्य की परिकल्पना को रामराज्य के रूप में, आदर्श राज्य के रूप में स्थापित करने का लक्ष्य निर्धारित किया। ○○○

सन्दर्भ – **१.** गाँधीजी की आत्मकथा–गाँधी **२.** सत्य ही ईश्वर है – गाँधी

पृष्ठ १७५ का शेष भाग

होती है और बन्धन से छूटकर भी होती है। भक्त इस बन्धन को काटना नहीं चाहता, इससे छूटना चाहता है।

रामायण में एक जगह शंकर भगवान पार्वती को बताते हैं –

जासु नाम जपि सुनहुँ भवानी।
भव-बंधन काटहिं नर ज्ञानी।
भव-बन्धन ते छूटहिं नर जप जाकर नाम।।

– जिस भव-बन्धन को ज्ञानी पुरुष नाम-जप के द्वारा काट देते हैं, उसी भव-बन्धन से भक्त भी नाम-जप के द्वारा छूट जाता है। हमें जिज्ञासा हो सकती है कि दोनों में अन्तर क्या है? लक्ष्य तो दोनों का बन्धन से मुक्ति पाना ही है न! परन्तु भक्त को मुक्ति के साथ वह रस्सी भी साबूत चाहिए। तभी तो उस रस्सी से अपने भगवान को बाँधेगा।

जिन बाँध्यो सुर, असुर, नाग नर प्रबल करम की डोरी।
सो अविच्छिन्न ब्रह्म जसुमति हँसि बाँध्यो सकत न छोरी।।

जिस कर्म की डोर से सुर, असुर, नाग, नर सब बँधे हुए हैं, उसी डोर से यशोदाजी अपने लाड़ले ब्रह्म को बाँधकर प्रसन्न हो रही हैं। इसीलिए कहा कि निरहंकार का भाव एक अद्भुत रस लाकर हमारे जीवन में संचारित कर देता है। जीवन में यदि हम सबकी प्रसन्नता चाहें, तो शायद किसी को हमारा सत्य खलता हो, इसलिए झूठ भी बोलना पड़े। **(क्रमशः)**

सारगाछी की स्मृतियाँ (१३७)

स्वामी सुहितानन्द

(स्वामी सुहितानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ-मिशन के उपाध्यक्ष हैं। महाराजजी जगजननी श्रीमाँ सारदा देवी के शिष्य स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज के अनन्य निष्ठावान सेवक थे। उन्होंने समय-समय पर महाराजजी के साथ हुए वार्तालापों के कुछ अंश अपनी डायरी में गोपनीय ढंग से लिखकर रखा था, जो साधकों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। 'उद्बोधन' बँगला मासिक पत्रिका में यह मई-२०१२ से २०२२ तक अनवरत प्रकाशित हुआ था। पूज्य उपाध्यक्ष महाराज की अनुमति से इसका अनुवाद रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द और वाराणसी के रामकुमार गौड़ ने किया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' में क्रमश: प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

०४-०२-१९६७

काशी में महाराज का शरीर अस्थिचर्ममात्र रह गया है। बातचीत प्राय: नहीं करते। चुपचाप रहते हैं। एक साधु ने विचार व्यक्त किया, 'महाराज, जब यह आपकी इतनी सेवा कर रहा है, तो फिर इसे कोई भय नहीं है।''

महाराज चौंककर बोले ''वह अपने कर्मों के फल से मेरी सेवा कर रहा है और मैं अपने कर्मों के फल से सेवा ले रहा हूँ।''

दृष्टिशक्तिहीन और चलने-फिरने में असमर्थता की दशा में महाराज काशी में प्राय: सारा समय बिस्तर पर बिताते हैं। ठाकुर की तिथिपूजा सन्निकट है। बातचीत के प्रसंग में सेवक बोला, ''महाराज, सात दिनों के बाद ठाकुर की तिथिपूजा है। यह सुनने के बाद महाराज बेचैन हो उठे और बोले – ''भूल तो नहीं जाओगे? यदि किसी काम में व्यस्त रहो, तो किसी को बताकर रखो न।'' महाराज के सामने ही एक व्यक्ति को जोर-जोर से बताया गया। किन्तु कहाँ कुछ हुआ? घंटों-घंटों तक वही एक अधीरतापूर्ण प्रतीक्षा और वही व्याकुलता। अनन्त: वह समय आ गया। अद्वैत आश्रम में भोर में ही मंगलारती की शंखध्वनि हो रही है। सेवक महाराज को निश्चिन्त करने हेतु जब उनके पास बैठकर बताने गया, तो उस समय वे कोई बात सुनने के लिए तैयार नहीं थे। एक ऐसी गंभीर, स्तब्ध और प्रसन्नमुख स्थिति में तन्मय होकर रहे कि उनसे एक भी बात कहने का साहस नहीं हुआ।

दिन-तारीख याद नहीं है, किन्तु यह सारगाछी की घटना है। प्रचंड गर्मी है। महाराज दोपहर में घर से बाहर निकले, वे हैंडपम्प के पास जाएँगे। तभी बाहर निकलकर उन्होंने देखा कि उनसे सुपरिचित एक युवक सहास्य वहाँ खड़ा है। उससे मिलने के लिए महाराज ने कई पत्र लिखे थे। वह किसी तरह पढ़ाई से कुछ समय निकालकर एक दिन के लिए सारगाछी आया था। वह मानो महाराज से भी अधिक प्रसन्न है। उसे देखकर महाराज विशेष हाव-भाव के साथ गाने लगे, जिसका भावार्थ था – ''माँ अपने पति को लेकर व्यस्त है और बेटी अपने पति को लेकर व्यस्त है।'' ऐसा ही मजाक करते हुए कह रहे हैं, ''न मैंने पाया गुड़, न मैंने पाया केला। तुम जो आए तात, यही मेरा भला।''

पुन: काशी लौट चलते हैं। महाराज अधिकांश समय चुपचाप रहते हैं। उन्हें थोड़ा आनन्दित करने के लिए सौम्यानन्द महाराज ने एक मजेदार घटना बताई। एक अखबार के सम्पादक के पास एक कर्मचारी आकर बोला – सर ! अखबार पूरा सम्पादित हो गया है, फिर भी थोड़ी जगह बच गई है, क्या किया जाए? सम्पादक थोड़ा सिर खुजलाते हुए गम्भीर कंठ से बोले – 'लिख दो कि विश्वस्त सूत्रों से पता चला है कि बलरामपुर ग्राम में एक तीस वर्षीय महिला ने एक साथ तीन संतानों को जन्म दिया, जच्चा-बच्चा सब सकुशल हैं। वह कर्मचारी प्रसन्न होकर चला गया। कुछ ही देर बाद वह वापस आकर बोला – ''सर ! सब हो गया है, केवल एक पंक्ति की जगह अभी भी बची है।'' सम्पादक ने फिर कहा – 'लिख दो, बाद में ज्ञात हुआ कि उक्त समाचार सत्य नहीं है। जाओ।''

महाराज का चुटकुला सुनकर हम लोग हँसने लगे। लगता है, प्रेमेश महाराज का भी कुछ मनोरंजन हुआ।

महाराज दृष्टिशक्ति रहित, चलने-फिरने में असमर्थ मानो एक जड़ पिंड की तरह पड़े हैं। बीच-बीच में किसी अत्यन्त स्वजन के आने पर वे क्षीण स्वर में दो-चार बातें कहते हैं। महाराज के स्वास्थ्य का यह समाचार सुनकर उनका दर्शन करने हेतु दिल्ली से स्वामी स्वाहानन्द आए। सेवक ने तेज आवाज में उनसे कहा – ''महाराज, स्वाहानन्द महाराज आए हैं, जो आपके संकटमोचक हैं।'' महाराज क्षीण स्वर

में केवल इतना ही बोले – ''देखो, मैं तुम्हारा कोई आदर-सत्कार नहीं कर सकूँगा। तुम स्वयं यथासमय खाना-पीना करो।'' यह कहकर पुन: आँखें बंद करके-चुपचाप सो गए।

१४ अप्रैल को बादल दा आए। १७ अप्रैल को उन्होंने महाराज के सम्बन्ध में एक घटना बताई। बादल दा की माँ इष्ट मंत्र भूल गई थीं। किसी गुरुभाई के साथ भी सम्पर्क सम्भव नहीं हुआ। यह तय हुआ कि वे पुन: ठाकुर के संघ में मंत्र दीक्षा लेंगी। प्रेमेश महाराज को बताने पर उन्होंने कहा था – नहीं, नहीं, व्याकुल होकर प्रार्थना करने के लिए कहो। यथासमय सब ठीक होगा।'' आश्चर्यजनक ढंग से बादल दा की माँ जब वृन्दावन गई थीं, तब एक वृद्ध नैष्ठिक ब्रह्मचारी से उनकी भेंट हुई, जो उनके ही गुरुभाई थे। अतएव उनसे वे मंत्र पुन: पा गईं।

पहले ही उल्लेख किया जा चुका है कि प्रेमेश महाराज काशी में २९ नवम्बर, १९६२ को आए। धीरे-धीरे स्वास्थ्य में थोड़ा सुधार हो रहा था। वर्ष १९६४ तक लगभग सब ठीक ही था। ठीक अर्थात् सम्पूर्ण शरीर में उनका मस्तिष्क ही थोड़ा सजग था। किन्तु वर्ष १९६५ से महाराज के स्वास्थ्य की स्थिति खराब होने लगी और मन भी बिलकुल अन्तर्मुखी हो गया। विशेषकर काशी में जुलाई, १९६५ में उनके बालसखा मोक्षदा बाबू लू लगने से कई दिनों तक अचेत रहकर दिवंगत हो गए। इसी वियोग के कारण महाराज मानो और भी अन्तर्मुखी हो गए। स्वामी अच्युतानन्द (उस समय ब्रह्मचारी) को लिखित सेवक के एक पत्र में यह बात प्रकट हुई है।

१६-४-६७ का पत्र,

'आपका पत्र पाकर अतीव आनन्दित हुआ। नव वर्ष का प्रणाम और प्रीति-शुभेच्छा।...

''महाराज का इस समय का स्वास्थ्य एक विलक्षण विभूति का जीवन है। वही न्यासी-चूड़ामणि, तीक्ष्ण विचारशील योगी, प्रेमिक भक्त, असाधारण स्मरणशक्ति और मेधावी मनुष्य आज एक अबोध, बालक के समान हठी, सर्वउपाधि युक्त कोमल शिशु के समान हैं। शिशु तुल्य दृष्टि, भय, बालहठ और निस्संकोच माँग। महाराज के शरीर में जितने प्रकार के कष्ट हैं, उतने प्रकार के कष्टों से जर्जरित मानव शरीर अपनी आँखों से देखने की बात तो दूर है, मैंने कहीं कान से सुना भी नहीं है। जिनका पूर्व जीवन इतना पवित्रमय रहा, उनका उत्तर काशी जीवन क्यों इतने सुदीर्घ काल तक इस प्रकार यातनामय है। अथवा मजे की बात यह कि जिनके शरीर में इतनी यातना है, वे मानो परम आनन्द से, खूब निश्चिन्त भाव से माँ की गोद में सिर रखकर सोए हैं। ऐसा उद्वेगरहित व्यक्ति मैंने कहीं नहीं देखा। मैं समझ नहीं पाता हूँ कि उनका मन कहाँ और कितने उच्च स्तर पर बंधा है, क्योंकि उनके मुख से वेद-वेदान्त की कोई बात नहीं निकलती, भक्ति-प्रेम की शिकायत और अभिमान, कुछ भी नहीं है। ठाकुर और श्रीमाँ के जीवन की लीला-कथा सुनने का भी प्रयास नहीं, किन्तु मस्तिष्क में क्या संवेदना नहीं है? यही नहीं, समय-विशेष पर अच्छी भूख, प्यास तथा निकटवर्ती लोगों के नाम तथा स्मरण-शक्ति सब ज्ञात है। महाराज के सभी गुणों में जो एक अपूर्व रसिक चूड़ामणि का भाव दिखता है, वह अभी भी, रोग-कष्ट के बीच भी दिखाई पड़ता है। कुल मिलाकर एक आनन्दमय बालक के साथ मैं परम आनन्द से दिन बिता रहा हूँ। अब अन्य कोई आकर्षण प्रियतर नहीं लगता, जैसे सिर पर भूत सवार वाला व्यक्ति नशे में रहता है, वैसे ही पास में रहना ही अच्छा लगता है। कोई बातचीत नहीं, शायद स्मृति में, मन में भी नहीं है। कोई प्रश्नोत्तर नहीं, शायद महाराज घंटों-घंटों तक चुपचाप सोए हैं। उसी नटखट बालक के शान्त मुखश्री की ओर देखने की इच्छा होती है। बहुत-सी बातें कह चुका। अब और कुछ भी नहीं कहूँगा। शायद इधर-उधर की अप्रासंगिक बातें मुख से निकल जाए। भय के कारण बस चुप हो गया।

उनकी एक और भी आकांक्षा है। नववर्ष के उपलक्ष्य में महाराज की इच्छा है कि कोई उनकी ओर से पूज्यपाद प्रेसीडेन्ट महाराज को साष्टांग दंडवत-प्रणाम करे। मैं यह दायित्व आपको देता हूँ। मेरी बात भी अतिरिक्त वस्तु के रूप में उनके प्रति निवेदित कीजिएगा।''

प्रेमेश महाराज ने जिनके द्वारा संघाध्यक्ष स्वामी वीरेश्वरानन्द जी महाराज को साष्टांग प्रणाम निवेदित किया था, उन्हीं ब्रह्मचारी ने उन्हें प्रणाम करके कहा था – ''महाराज, पूजनीय प्रेमेश महाराज का साष्टांग प्रणाम निवेदित कर रहा हूँ।'' पूज्यपाद प्रेसीडेन्ट महाराज ने उठ-खड़े होकर उन ब्रह्मचारी से हाथ जोड़ कर कहा था, ''तुम भी उनसे मेरा प्रणाम कहना।'' **(क्रमश:)**

साधुओं के पावन प्रसंग (६३)

स्वामी प्रभवानन्द

स्वामी चेतनानन्द

(स्वामी चेतनानन्द जी महाराज से रामकृष्ण संघ के भक्त भलीभाँति परिचित हैं। वर्तमान में महाराज वेदान्त सोसायटी, सेंट लुइस के मिनिस्टर-इन-चार्ज हैं। उन्होंने श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा, स्वामी विवेकानन्द और वेदान्त पर अनेक पुस्तकें लिखी और अनुवाद की हैं। प्रस्तुत पुस्तक में रामकृष्ण संघ के महान त्यागी संन्यासियों के संस्मरण हैं, जिनके सम्पर्क में लेखक स्वयं आए थे। 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु मूल बंगला से इसका हिन्दी अनुवाद धारावाहिक रूप से दिया जा रहा है। – सं.)

२६/०४/१९७२ हॉलीवुड

सत्येन महाराज (स्वामी आत्मबोधानन्द जी) वाराणसी में नित्य भागवत पाठ करते थे। एक दिन किसी व्यक्ति के न आने पर उन्होंने पाठ बन्द रखा था। स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज (राजा महाराज) के पास जाते ही उन्होंने पूछा, ''क्या, भागवत पाठ किया?'' ''नहीं महाराज।'' ''क्यों?'' ''कोई नहीं था।'' ''सुनने आये थे। वे लोग मेरे पास शिकायत करके गये कि आज भागवत पाठ नहीं हुआ।''

सूर्य महाराज काशी में महाराज के सेवक थे। महाराज की आज्ञा थी कि सन्ध्या के समय उनके पास कोई न जाये। किन्तु सूर्य महाराज ने देखा कि एक वृद्ध ऊपर महाराज के पास जा रहे हैं। उनके निषेध करने पर भी वे वृद्ध नहीं सुने। तत्पश्चात् सूर्य महाराज ने उनके पीछे-पीछे जाकर महाराज के कमरे के दरवाजे पर धक्का दिया और दरवाजा खोलकर देखा कि कमरे में कोई नहीं है। महाराज के कारण पूछने पर सूर्य महाराज ने उन वृद्ध की बात बतायी। महाराज ने कहा, ''ओ, तुमने उनको देखा है। अभी जाओ।''

स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज

हमारे कनखल आश्रम के एक भण्डारा में अन्य सम्प्रदाय के अनेक साधु उपस्थित हुए। वहाँ पर राजा महाराज के लिए एक निर्दिष्ट कुर्सी थी। अन्य सम्प्रदाय के एक साधु के उस पर बैठने जाने पर मैंने उनको मना किया। वे केवल हँसे। तत्पश्चात् प्रसाद के समय महाराज को अलग से आसन देने पर उन्होंने कहा, नहीं, मैं सबके साथ ही बैठूँगा। आज यहाँ पर चार ब्रह्मज्ञानी आये हैं। प्रसाद के बाद मैंने देखा कि जिस साधु को मैंने कुर्सी पर बैठने के लिए मना किया था, वे महाराज के दाँयी ओर बैठे हुए हैं और हास-परिहास कर रहे हैं।

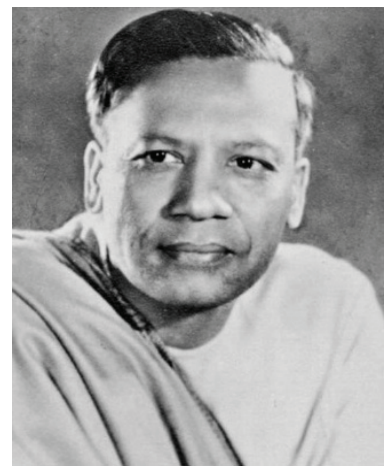

स्वामी प्रभवानन्द

एक बार बेलूड़ मठ में अमेरिका का एक भक्त दर्शन करने आया था। मिस मैक्लॉउड तथा शरत महाराज के बहुत जोर-जबरदस्ती करने पर भी महाराज ने उसके साथ भेंट नहीं की। तदनन्तर भक्त नाव से दक्षिणेश्वर गया और सन्ध्या समय वापस आ गया। वह जब नाव में था, तब महाराज गंगा के घाट पर खड़े थे। महाराज के देखते ही वह भक्त विह्वल होकर नाव में ही गिर कर मर गया।

ऐसा लगता है कि ब्रिटिश सरकार के समय मठ में किसी विदेशी की मृत्यु होने से समस्या हो सकती थी। इसीलिए महाराज ने उसको दर्शन नहीं दिया।

योगीन-माँ को निर्विकल्प समाधि हुई थी। अन्त में नातियों के प्रति बहुत आसक्ति हो गयी थी। स्वामीजी ने ऐसा कहा था कि उसका प्रारब्ध कट जा रहा है।

स्वामी शुद्धानन्द ने स्वयं अपनी आँखों देखी यह घटना मुझे बतायी थी : एक दिन स्वामीजी सन्ध्या में शिष्यों को पाणिनी व्याकरण पढ़ा रहे थे। सन्ध्या के समय बाबूराम महाराज ने आकर कहा, ''आरती का समय हो गया है। अभी

सब लोग आ जाओ।'' इस पर स्वामीजी ने बाबूराम महाराज को डाँटते हुए कहा, ''केवल मन्दिर में घण्टा बजाकर प्रदीप घुमाना ही आरती है और यह आरती नहीं है क्या?'' बाबूराम महाराज ने कुछ न बोलकर अकेले ही आरती समाप्त की।

तत्पश्चात् स्वामीजी मन्दिर में जाकर ठाकुर के श्वेतपत्थर की वेदी पर माथा ठोकते-ठोकते लगातार कहने लगे, ''ठाकुर क्षमा करो, ठाकुर क्षमा करो।'' उनके सिर में रक्त जम गया था।

राजा महाराज ने एक दिन कहा, ''हमारा संघ-जीवन प्रेम-स्नेह के ऊपर प्रतिष्ठित है, नियम-कानून के ऊपर नहीं।'' स्वामी धीरानन्द ने एक दिन महाराज से कहा, ''महाराज, इन सब नवीन साधुओं के लिए कुछ नियम करना चाहिए।'' ''स्वामीजी तो पहले से ही नियम तैयार करके गये है।'' ''हाँ महाराज, किन्तु हमलोग और कुछ नियम चाहते हैं।'' तब महाराज ने कहा, ''कृष्णलाल, अनेक नियम न बढ़ाकर हृदय में प्रेम-स्नेह बढ़ा दो।''

स्वामी शर्वानन्द ने मद्रास में एक दिन महाराज से पूछा, ''महाराज, कर्म करते समय हमारे साधुओं के बीच में इतना मन-मुटाव क्यों होता है?'' महाराज ने तत्क्षण उत्तर दिया, ''क्योंकि तुमलोग ठाकुर को प्रेम नहीं करते।''

मठ में महाराज एक दिन प्रसाद पा रहे थे और सेवक उनको घेर कर बैठे हुए थे। तब काली महाराज ने कहा, ''राजा, तुम ये सब क्या करने लगे हो? ये सब तुमको प्रतिमा बनाकर छोड़ देंगे?'' महाराज ने हँसकर उत्तर दिया, ''देखो काली भाई, ये लोग मुझको प्रेम नहीं करते। (प्रसाद के कटोरी को दिखाकर) ये सब प्रसाद के लोभ से मेरे पास भीड़ करते हैं। मैं तो अब अधिक नहीं खा पाता हूँ।'' काली महाराज ने कहा, ''राजा, तुम इसको गम्भीरतापूर्वक नहीं ले रहे हो।'' महाराज ने कहा, ''देखो कालीभाई, ये लोग मुझसे अधिक हरि भाई को प्रेम करते हैं। जो त्याग-वैराग्य की बातें अधिक गरम-गरम बोलता है, उसी के पास ये लोग जाते हैं। तुम भी गरम-गरम बोलना आरम्भ करो, तुम्हारे पास भी ये लोग जायेंगे।''

एक दिन बेलूड़ मठ में महाराज और बाबूराम महाराज दोनों बैठे हुए हैं। बाबूराम महाराज ने कहा ''स्वामीजी पतित-पावन थे।'' महाराज ने कहा, ''मैं भी पतित-पावन हूँ।''

बोसी सेन के भाई टाबूक को श्रीमाँ और महाराज बहुत स्नेह करते थे। एक बार उससे गर्हित कार्य हो गया, फलस्वरूप लज्जा से मुँह नहीं दिखाता था तथा महाराज से बचता था। एक दिन दोपहर के बाद बलराम मन्दिर में वह किसी से भेंट करने आया और बरामदा में महाराज के सामने आ गया। महाराज ने कहा, ''टाबू, तुमने बड़ा सिंग वाला भैंस देखा है?'' ''हाँ महाराज।'' ''उस भैंस के सिंग

रामकृष्ण मिशन स्टूडेन्ट्स होम, चेन्नई

पर यदि अनेक मच्छर बैठते हैं, तो क्या भैंस को उसका अनुभव होगा?'' टाबू चुप रह गया। तब महाराज ने कहा, ''मैं वहीं भैंस हूँ।'' अर्थात् महाराज ने कहना चाहा कि तुम्हारे उस सामान्य-सी भूल को मैं कुछ भी नहीं मानता हूँ।

२७/१०/१९७३, हॉलीवुड

ऐनी बेसेन्ट मद्रास में महाराज के साथ साक्षात्कार करना चाहती थीं। महाराज इससे बचते थे। सी.पी. रामास्वामी अय्यर के साथ बेसेन्ट ने यह निश्चय किया कि जब अय्यर महाराज के साथ बात करेंगे, तब अय्यर को खोजते हुए आकर वे महाराज के साथ साक्षात्कर करेंगी। उस दिन महाराज को बहुत बुखार हुआ। किसी के साथ साक्षात्कार नहीं हुआ। रामकृष्ण मिशन स्टूडेन्ट्स होम, चेन्नई शुभारम्भ के दिन बेसेन्ट ने प्रयत्न किया था। महाराज ने उनको देखते ही कमरे के भीतर जाकर अन्दर से दरवाजा बन्द कर दिया।

१५/०३/१९७४, हॉलीवुड

स्वामी ब्रह्मानन्द जी के द्वारा संकलित श्रीश्रीरामकृष्ण उपदेश प्रसंग में स्वामी प्रभवानन्द ने कहा, ''महाराज ने शुद्धानन्दजी से कहा था, 'ठाकुर बताते हैं और मैं लिखता हूँ। ठाकुर ने दो उपदेश बताने से मना किया है, फिर भी एक उपदेश शरत् की पुस्तक में प्रकाशित हो गया है। वह था काशी में मरने से मुक्ति होती है।' दूसरा उपदेश महाराज ने नहीं बताया।''

२७/०४/१९७६, हॉलीवुड

स्वामी प्रभवानन्द ने कहा, ''स्वामी शर्वानन्द ने मद्रास में स्वामी ब्रह्मानन्द महाराज से गाँधीजी के सम्बन्ध में पूछा। महाराज ने कहा, 'नैतिक जीवन की शक्ति के प्रभाव से वे उच्च आध्यात्मिकता का द्वार खटखटा रहे हैं।' ''

०६/०५/१९७६, हॉलीवुड

मैक्समूलर जब ठाकुर की जीवनी लिख रहे थे तब प्रतापचन्द्र मजूमदार ने उनके साथ भेंट करके कहा था, ''रामकृष्ण अच्छे मनुष्य थे। किन्तु अन्तिम समय में वे वेश्याओं और शराबियों के साथ मिल गये थे।'' मैक्समूलर यह सुनकर आनन्द से कुर्सी छोड़कर उठ गये और कहा, ''इससे ही प्रमाणित होता है कि वे अवतार हैं। ईसा मसीह ने भी उसी प्रकार पतित लोगों का उद्धार किया था।''

२३/०६/१९७६, हॉलीवुड

विज्ञान महाराज ने विष्णुपुर में इस घटना को बताया था। ठाकुर ने एक दिन सभी संन्यासी शिष्यों को बुलाकर कहा, ''मैं बीच में बैठता हूँ और तुमलोग मुझे घेर कर बैठो। श्रीकृष्ण के रासलीला का ध्यान करो।'' उस दिन उन्होंने सभी को रासलीला का रसास्वादन करवा दिया।

प्रेमानन्द के प्रसंग में राजा महाराज कहते थे, ''अरे, वे लोग जो बोलते हैं, यदि श्रद्धा से एक-दो का पालन भी कर पायें, तो जीवन धन्य हो जायेगा, देखना। वे लोग क्या साधारण मनुष्य हैं ! वे लोग जिस ओर देखते हैं, उसी ओर पवित्र हो जाता है !''

ठाकुर ने काशीपुर में अपने चित्र की स्वयं पूजा की थी। दीवार में उनका एक चित्र टँगा हुआ था। उन्होंने महाराज को उस चित्र को ले आने के लिए कहा तथा बगीचा से कुछ फूल लाने के लिए कहा। तत्पश्चात् फूलों से चित्र की पूजा करके हृदय और मस्तक से लगाया तथा कहा, ''देखना इस चित्र की घर-घर में पूजा होगी।''

४ जुलाई, १९७६, हॉलीवुड

प्रभवानन्दजी का शरीर एक महीने से स्वस्थ नहीं था। मैं और क्रिस्टोफर इशरवूड हॉलीवुड और सान्टा बारबरा में व्याख्यान देते थे। ३ जुलाई को प्रात: मैं मन्दिर से जप-ध्यान करके कमरे में वापस आ रहा हूँ, तो देखा कि कृष्णानन्द और नर्स महाराज को पकड़कर मन्दिर की प्रदक्षिणा करा रहे हैं। मुझे देखकर महाराज थोड़ा-सा हँसे। तदनन्तर कमरे में चले गये। उस दिन महाराज को severe heart attack हुआ। पूरा दिन पसीना निकलता रहा। वे अस्पताल नहीं जाना चाहते थे। पूरे दिन 'माँ' और 'महाराज' को पुकारते रहे। मैं कई बार उनके कमरे में गया। बेलूड़ मठ में समाचार दिया। रात्रि के १० बजे उन्होंने मुझसे कहा, ''तुम कमरे में जाकर सोओ।'' उनके कमरे में कृष्णानन्द, अभया तथा और दो नर्स थीं। मैं रात्रि के १२ बजे के थोड़ा पहले जाकर देखता हूँ कि प्राय: अन्तिम समय आ गया है। १२.०५ मिनट पर अर्थात् ४ जुलाई को महाराज ने शरीर-त्याग किया। हमलोग साधु और संन्यासिनियों ने 'हरि ॐ रामकृष्ण' सुनाया। हमारे सामने ही एक प्रसिद्ध संन्यासी चले गये।

तत्पश्चात् अमेरिका के प्राय: सभी भारतीय संन्यासी भोज-समारोह में आये। कहा जाता है कि मरेगा साधु उड़ेगी छाई, तब साधु के गुण गाई। स्वामी प्रभवानन्द जी महाराज एक विद्वान संन्यासी थे। **(क्रमश:)**

राजपुत्र का भ्रम

स्वामी सर्वप्रियानन्द

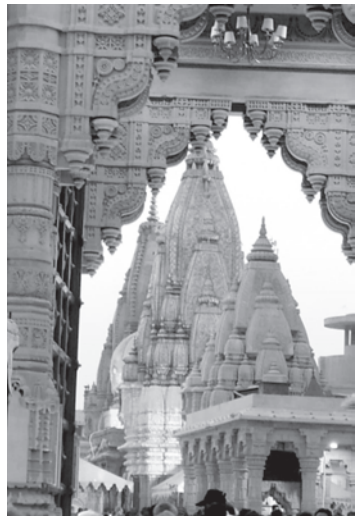

भारत के काशी की एक बहुत पुरानी घटना है। एक बार काशी-नरेश की एक नाटक करवाने की इच्छा हुई। नाटक के लिए सभी प्रकार की तैयारियाँ हुईं। मंच इत्यादि बनाया गया। लेकिन एक समस्या खड़ी हो गयी। नाटक के लिए एक पाँच साल की कन्या की आवश्यकता थी, वह कहीं पर नहीं मिली। राजा को भी कोई कन्या नहीं थी।। अड़ोस-पड़ोस में पता लगाने पर भी नहीं मिली। जब रानी को पता चला, तो उन्होंने सूचना भेजी – राजपुत्र की आयु भी तो पाँच साल की है, तो क्यों न उनको ही सजाया जाए, किसी को भी समझ में नहीं आयेगा। ऐसा ही किया गया। दासियों ने राजपुत्र को एक राज-कन्या की तरह सजा दिया। सजावट के बाद मासूम राजपुत्र इतना मनमोहक लग रहा था कि कहना ही क्या ! रानी ने आदेश दिया, इसका एक तैलचित्र बनाकर रख दिया जाए। वैसा ही किया गया।

इसके बाद पन्द्रह वर्ष बीत गये। उस चित्र को एक पुराने कक्ष में रख दिया गया। एक लम्बे अन्तराल के बाद राजकुमार भी इस बात को पूरी तरह भूल गये। अब राजकुमार बीस वर्ष के हो गये। एक दिन राजकुमार महल में टहलते-टहलते उस पुराने कक्ष में पहुँच गये। उनकी दृष्टि धूल से भरे एक चित्र पर गयी। जब उन्होंने धूल को स्वच्छ करके चित्र को देखा, तो वह एक राजकन्या का था। उस चित्र के नीचे लिखे दिनांक पता चला कि राजकुमारी की और राजकुमार की आयु समान है। राजकुमारी के चित्र से मुग्ध होकर राजकुमार के मन में प्रेम उपजा। वे राजकुमारी को खोजने लगे। दिन बीतते गये। राजकुमार चिन्तित रहने लगे। उनके मन में आनन्द नहीं था, क्योंकि उनको राजकन्या का पता नहीं चला। राजा और रानी दोनों ने ही राजकुमार के इस परिवर्तन को देखा। राजकुमार किसी को कुछ बताते भी नहीं। अन्त में राजा ने उनकी समस्या को पता करने के लिये एक वयस्क मंत्री को भेजा। राजपुत्र ने अपने मन की बात बतायी कि वे किसी को प्रेम करते हैं। मंत्री बोले – ठीक है, लेकिन वह है कौन? राजपुत्र ने कहा, वह एक राजकन्या है। मंत्री ने कहा, बहुत अच्छी बात है। लेकिन रहती कहाँ है? राजपुत्र ने कहा – वास्तव में मैंने उन्हें प्रत्यक्ष नहीं देखा है। इस राजमहल के एक पुराने कमरे में उनका चित्र केवल देखा है। अब मंत्रीजी थोड़ा चिन्तित हो गये। तब उन्होंने कहा, क्या आप मुझे उस चित्र को दिखा सकते हैं? अवश्य ! राजकुमार ने उस कक्ष में जाकर उस चित्र को दिखाया। जैसे ही चित्र को दिखाया। मंत्रीजी तुरन्त समझ गये कि राजकुमार को कहाँ भ्रम हुआ है। मंत्रीजी ने राजुकमार को समझाया, राजकुमार ! यह पन्द्रह वर्ष पुराना आपका ही चित्र है। लेकिन आप भूल गये हैं। राजकुमार का भ्रम दूर हो गया। वे अपनी स्वाभाविक दिनचर्या में वापस आ गये।

कहानी सुनने में साधारण-सी लगती है, लेकिन अद्वैत वेदान्त की दृष्टि में इसका एक विशेष तात्पर्य है। अद्वैत वेदान्त की दृष्टि में हमारे दुखों का कारण हमारी द्वैत भावना है। हमलोग संसार में रह रहे हैं। इस संसार की रचना मैं और मेरा संसार, इस द्वैत भावना से हुई है। अद्वैत मतानुसार द्वैत की भावना वास्तव में गलत है या भ्रम है। ठीक राजकन्या की चिन्ता की तरह। हमलोग भी सोचते हैं, राजकन्या जैसी कोई है, जिसकी प्राप्ति नहीं होने से इतना दुख है। जिस क्षण हमलोगों को ज्ञात हो जाएगा, वास्तव में मैं ही वह राजकन्या हूँ तथा संसार की मुझसे ही उत्पत्ति होती है और मुझ में ही यह लीन हो जाता है, उसी क्षण सभी दुखों की समाप्ति हो जायेगी। अद्वैत वेदान्त हमें यही शिक्षा देता है। हमलोग स्वरूपत: पूर्ण हैं और यह जगत हमारा ही एक अपूर्ण प्रकाश है। वास्तव में जगत सत्य नहीं है। यह स्वप्नवत् असत्य है। स्वप्न में और जगत में दोनों में सुख-दुख का अनुभव होता है। लेकिन वास्तव में वे सुख-दुख कभी भी हमें स्पर्श नहीं कर पाते।

(प्रेषक – स्वामी विश्वदेवानन्द)

रामकृष्ण मिशन की १२५वीं वर्षगाँठ के उपलक्ष्य में अखिल भारतीय युवा शिविर और अखिल भारतीय रामकृष्ण-विवेकानन्द भाव-प्रचार परिषद सम्मेलन आयोजित हुआ

रामकृष्ण मिशन की १२५वीं वर्षगाँठ के उपलक्ष्य में अखिल भारतीय **युवा सम्मेलन का आयोजन २५ और २६ दिसम्बर, २०२३** को बेलूड़ मठ में किया गया। इस सम्मेलन का उद्घाटन रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के सह-संघाध्यक्ष परम पूज्यपाद स्वामी सुहितानन्द जी महाराज ने किया। सम्मेलन में

आगत युवाओं को सह-संघाध्यक्ष पूज्यपाद स्वामी भजनानन्द जी महाराज, रामकृष्ण मठ और मिशन के महासचिव पूज्यपाद स्वामी सुवीरानन्द जी महाराज और अन्य कई संन्यासियों और प्रसिद्ध वक्ताओं ने सम्बोधित किया। इस सम्मेलन में ७६५ आवासीय और ६२० अ-आवासीय प्रतिनिधियों ने भाग लिया।

रामकृष्ण मिशन की १२५वीं वर्षगाँठ के उपलक्ष्य में अखिल भारतीय **रामकृष्ण-विवेकानन्द भाव-प्रचार परिषद सम्मेलन का आयोजन २९ और ३० दिसम्बर, २०२३** को बेलूड़ मठ के प्रांगण में स्वामी अभेदानन्द भवन में किया गया। सम्मेलन के विभिन्न सत्रों को पूज्यपाद स्वामी सुहितानन्द जी महाराज, स्वामी भजनानन्द जी महाराज, स्वामी गिरीशानन्द जी महाराज, स्वामी दिव्यानन्द जी, स्वामी विमलात्मानन्द जी, स्वामी सुवीरानन्द जी, स्वामी दिव्यव्रतानन्द जी और कई अन्य संन्यासियों और प्रसिद्ध वक्ताओं ने सम्बोधित किया। इस इस द्वि-दिवसीय सम्मेलन में ३६ भाव प्रचार परिषद के ९०० सदस्य-आश्रमों के कुल १५१२ प्रतिनिधियों ने भाग लिया और रामकृष्ण संघ के भाव-प्रचार परिषद के ९८ अध्यक्ष एवं उपाध्यक्षों ने भाग लिया।

नव निर्मित श्रीरामकृष्ण मन्दिर का लोकार्पण

१६ जनवरी, २०२४ को, **रामकृष्ण मिशन, विद्यालय, कोयम्बटुर** में भगवान श्रीरामकृष्ण के नव निर्मित मन्दिर का लोकार्पण रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के उपाध्यक्ष तथा रामकृष्ण मठ, चेन्नई के अध्यक्ष परम पूज्यपाद स्वामी गौतमानन्द जी महाराज ने किया। १५ जनवरी को तमिलनाडु का प्रमुख त्योहार पोंगल भी मनाया गया। सुन्दर यज्ञशाला में पंडितवृन्द अनुष्ठान और वेद-मन्त्रोच्चार कर रहे थे। अपराह्न में सन्तों और अन्य विद्वानों के व्याख्यान, नामसंकीर्तन और श्रीमाँ सारदा तथा हरिकथा पर नाटक की प्रस्तुति भी की गयी। १६ जनवरी को प्रात: ६.३० बजे कुम्भाभिषेक हुआ। पूज्यपाद स्वामी गौतमानन्द जी महाराज और ३०० साधुओं ने तीन बार मन्दिर की परिक्रमा कर पूज्यपाद महाराज सबके लिये इस मन्दिर को लोकार्पित करते हुये मुख्य द्वार से मन्दिर में प्रवेश किया। सबके ऊपर कुम्भाभिषेक जल का वर्षण किया गया। १०.४५ में सार्वजनिक सभा का आयोजन हुआ। पूज्यपाद स्वामी गौतमानन्दजी महाराज ने आशीर्वचन दिया और 'सौरभम्' नामक स्मारिका का विमोचन

किया। यतिपूजन किया गया। अपराह्न और सन्ध्या में व्याख्यान, नाम-संकीर्तन और सांस्कृतिक कार्यक्रम हुये। १७ जनवरी को श्रीरामकृष्ण देव की विशेष पूजा हुई और चण्डी-होम किया गया। अन्य व्याख्यान, हरिकथा, विष्णुसहस्त्रनाम का पाठ और भगवान श्रीरामकृष्ण का पालकी-उत्सव भी मनाया गया, जिसमें सन्तों और भक्तों ने भजन गाये हुये परिसर की परिक्रमा की। इस त्रिदिवसीय कार्यक्रम का आयोजन किया गया, जिसमें ३२० साधुओं और ११००० भक्तों ने भाग लेकर कार्यक्रम का आनन्द लिया।